ग्रिगोर मेंडेल

जीन विज्ञान के जनक

नरसिंह दयाल

चित्रांकन
मित्रारूण हलदार

नेहरू बाल पुस्तकालय

ग्रिगोर मेंडेल

जीन विज्ञान के जनक

नरसिंह दयाल

चित्रांकन
मित्रारूण हलदार

NBT INDIA

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 978-81-237-6040-7

पहला संस्करण : 2011
दूसरी आवृत्ति : 2012 *(शक 1934)*
मूल © नरसिंह दयाल, 2010
Gregore Mendal : Jean Vigyan Ke Janak *(Original Hindi)*
₹ 55.00
निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 द्वारा प्रकाशित

अपनी दूसरी पीढ़ी को

ग्रिगोर मेंडेल की गणना विश्व के महानतम एवं युगप्रवर्त्तक विज्ञानियों में की जाती है। 1865 में उन्होंने आनुवंशिकता के सिद्धांतों की स्थापना की थी और एक नया विज्ञान आनुवंशिकी (जेनेटिक्स) की आधारशिला रखी थी। मानव जाति की विचारधारा पर आनुवंशिकी या जीन विज्ञान ने जितना गहरा प्रभाव डाला है और मानव मस्तिष्क को झकझोरा है, उतना शायद ही किसी और विज्ञान ने किया है। आज जीन, जिसकी परिकल्पना सर्वप्रथम मेंडेल ने की थी, मानव इतिहास और सभ्यता की दिशा एवं दशा बदलने की क्षमता रखता है। जीन आज मानव मुक्ति का प्रथम मंत्र बन गया है। इसके बावजूद हम 'जीन विज्ञान के जनक' ग्रिगोर मेंडेल के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में बहुत कम जानते हैं। इसका प्रमुख कारण शायद यह रहा है कि उनके इतने महत्त्वपूर्ण विचारों को समझने में तत्कालीन विज्ञान जगत् असमर्थ था। अतः उन्हें वह ख्याति उनके जीवनकाल में नहीं मिल सकी, जिसके वे अधिकारी थे। 37 वर्षों की गुमनामी और मृत्यु के 18 वर्षों के बाद 1902 में उनके द्वारा प्रतिपादित आनुवंशिकता के सिद्धांतों को दुबारा खोजे जाने के बाद ही वे प्रकाश में आए।

इस छोटी-सी पुस्तिका में मैंने उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने का एक विनम्र प्रयास किया है। आप इसे मेरे जैसे आनुवंशिकी के विद्यार्थी की उस महामानव के प्रति श्रद्धांजलि भी समझ सकते हैं। मुझे आशा ही नहीं, विश्वास भी है कि यह पुस्तक विज्ञान में रुचि रखनेवाले पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

इस पुस्तक के निर्माण में मेरी पुत्रवधु सुजाता ने इंटरनेट द्वारा मेंडेल के बारे में महत्त्वपूर्ण सूचनाएं उपलब्ध कराकर मेरी बड़ी मदद की है। मैं अपने परिजनों, विशेषकर धर्मपत्नी बिन्दु को याद किए बिना नहीं रह सकता।

नरसिंह दयाल

नवकुंज, एच 1/70, आवासीय कॉलोनी
हरमू, रांची 834002 (झारखंड)

टमाटर के पौधों में टमाटर ही क्यों फलते हैं, बैंगन क्यों नहीं? बिल्ली से बिल्लौटे ही क्यों जन्म लेते हैं? शेर का बच्चा शेर ही क्यों होता है? फूलों के रंगों का राज क्या है? पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों में इतनी विभिन्नता क्यों है? क्या कारण है कि हम अपने माता-पिता के समान हैं, बाहरी रूप-रंग में ही नहीं, गुणों और व्यवहारों में भी। फिर भी हम अपने माता-पिता से कई शारीरिक और चारित्रिक विशेषताओं में बिल्कुल अलग होते हैं। ऐसा क्यों? अपंग शिशुओं का जन्म क्यों होता है? जीवों के जन्म और आनुवंशिकता से संबंधित ऐसे प्रश्नों के उत्तर मनुष्य सभ्यता के शुरुआती दिनों से ही ढूंढ़ता रहा है।

आज से करीब दो-ढाई हजार वर्ष पहले तक विज्ञान इन प्रश्नों के उत्तर देने में बिल्कुल लाचार था। इसीलिए जन्म से संबंधित अंधविश्वास, मिथक और दंतकथाएं विश्व के हर समाज में पाई जाती हैं और इन पर बड़ी-बड़ी पोथियां लिखी गई हैं। आज भी ये कहानियां दादियों और नानियों के मुंह से सुनी जा सकती हैं। चाहे क्यों न हम अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का ढिंढोरा पीटें, हमारे धर्मग्रंथों में भी जन्म से संबंधित ऊटपटांग और ऊलजुलूल कहानियां भरी पड़ी हैं और आज भी हमारे धर्माचार्य अपने प्रवचनों में उन्हें बड़े चाव से सुनाते हैं। ऐसे भी अनेक मिथक और दंतकथाएं मौजूद हैं, जिनके अनुसार जन्म के लिए निषेचन यानी नर और मादा तत्त्वों का मिलन जरूरी नहीं है। ज्ञान की कमी के कारण लोगों को वैज्ञानिक तथ्यों की जगह अजीबोगरीब कल्पनाओं का घूंट पिलाया जाता रहा है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि जब तक विज्ञान इन प्रश्नों के उत्तर देने में समर्थ नहीं था, लोग वैज्ञानिक तथ्यों की जगह अपनी कल्पनाशक्ति से ही काम चला लिया करते थे। ईसा पूर्व के वर्षों में भी जब विज्ञान बिल्कुल शैशव अवस्था में था, विज्ञानियों की भी विचित्र कल्पनाएं हुआ करती थीं, जिन्हें सुनकर आज एक बच्चा भी हंस देगा। प्राचीन रोम

के विख्यात विज्ञानी मार्क तेरेसी वारो (116-27 ई. पू.) ने खेती के बारे में अपनी किताब में लिखा है कि मधुमक्खियों का जन्म थोड़ा मधुमक्खियों से और थोड़ा बैलों से होता है। बैलों से उनका जन्म तब होता है, जब वे सड़ने लगते हैं। इसीलिए ग्रीक दार्शनिक आर्खीलास मधुमक्खियों को बैलों की पंख लगी हुई संतान मानते थे और ततैयों को घोड़ों की। गर्भाधान या निषेचन के बारे में भी उनके ख्याल कुछ कम हास्यास्पद नहीं थे। क्रोटोन के आल्कमेयोन (400 ई. पू.) मानते थे कि शुक्राणु मस्तिष्क का अंश होता है, लेकिन अनाक्सागोरस, डेमोक्रीटीस और हिपोक्रिटीस का मानना था कि शुक्राणु की उत्पत्ति शरीर के सभी भागों से होती है।

लेकिन किस्सों और कहानियों में जो भी हो, इस समय तक खेती और पशुपालन ने आवश्यक उद्योग का रूप ले लिया था। अपने अनुभवों के आधार पर लोग नये प्रकार के बीजों और नस्लों की खोज में गंभीरता से लगे हुए थे। कभी-कभी यह देखकर आश्चर्य होता है कि मानवीय प्रयोगों की जड़ें अतीत में कितनी दूर तक फैली हुई थीं। इसमें थोड़ा भी संदेह नहीं है कि खेती योग्य अधिकतर पौधों का सुधार प्राचीनकाल में ही हो चुका था। कुछ वर्ष पहले पुरातत्त्ववेत्ताओं को करीब 2500 वर्ष पुराना एक शिलापट्ट मिला था। इस पर एक जंतु का चित्र खुदा हुआ है, जो अपने विशाल पंखों को फैलाए हुए खजूर के पेड़ों पर मंड़रा रहा है और मुखौटा लगाए एक पुजारी इस पेड़ के मादा फूलों के कृत्रिम परागण का अनुष्ठान पूरा करा रहा है। इस प्रकार प्रजनन और आनुवंशिकता से जुड़े सवालों के बारे में सदियों से दो प्रकार की सूचनाएं मिलती आ रही हैं। एक ओर तो मनगढ़ंत किस्से-कहानियां जो हास्यास्पद हैं और दूसरी ओर ऐसे भी तथ्य जमा होते जा रहे थे, जिनका स्रोत कोई सतत् अनुभव और आकस्मिक ज्ञान होता था या मानवीय कोशिशों या गलतियों का नतीजा।

लेकिन इस तरह से हमेशा काम नहीं चल सकता था। ज्यों-ज्यों समाज विकसित होता गया, त्यों-त्यों खेती और पशुपालन के सामने नई-नई समस्याओं ने जन्म लेना शुरू कर दिया था। इन समस्याओं का समाधान विज्ञान और केवल विज्ञान ही कर सकता था। यह स्थिति 16वीं सदी में पैदा होती है, जो करीब-करीब 19वीं सदी के अंत तक बनी रहती है।

आनुवंशिकता और प्रजनन को समझने के लिए आवश्यक वैज्ञानिक तथ्यों का पता लगाने का काम 17वीं सदी के उत्तरार्द्ध से शुरू होता है। 1665 ई. में रॉबर्ट हूक ने शीशे से एक खुर्दबीन, (माइक्रोस्कोप) बनाया, जिससे वे तरह-तरह की चीजें देखने लग गए।

एक बार शराब की बोतल का एक पुराना कार्क उनके हाथ पड़ गया और वे उसे अपने खुर्दबीन से देखने लगे। उन्हें यह देखकर बहुत ताज्जुब हुआ कि नर्म और चिकना लगने वाला

राबर्ट हूक

कार्क नन्हे कोशों या कोटरों से बना हुआ है। इन कोटरों को उन्होंने कोशिका (सेल) का नाम दिया। ऐसी ही संरचना उन्हें अन्य वनस्पतियों में दिखलाई पड़ी, जिसे उन्होंने अपने मित्रों को दिखाया, लेकिन इसे कोई महान खोज नहीं कहा जा सकता था। उन्होंने इस खोज के बारे में सिर्फ इतना लिखा, "जिस परमाणु के बारे में प्राचीन दार्शनिक सोचा करते थे, वह इतना बड़ा होता है कि इन कोशिकाओं से गुजर नहीं सकता है; इतनी नन्ही होती हैं ये।" उस समय वे लिख भी क्या सकते थे? बात यहीं खत्म हो गई थी।

उस समय विज्ञान की प्रगति की गति बड़ी धीमी थी और 50-100 साल के अंतराल का कोई अर्थ नहीं था। 18वीं और 19वीं सदी में यूरोप, विशेषकर इंग्लैंड के सिर पर नई-नई बातों को जानने का, ज्ञान और विज्ञान का भूत सवार हो गया था। पूरे यूरोप में ज्ञान और विज्ञान की एक लहर-सी दौड़ रही थी और शहरों के अलावा छोटे कस्बे भी इसकी चपेट में आ चुके थे। लोगों ने ठान लिया था कि जल-थल, आकाश, पेड़-पौधे और जीव-जंतु के सारे भेद जानकर ही दम लेंगे। आदमी की जानकारी की सीमा के बाहर कुछ भी नहीं रह पाएगा। नई-नई बातों को जानने का, जान लेने के बाद उन्हें बस में करने का और हासिल करने का, फिर उन्हें अपने काम में लाने का जैसे एक जुनून सवार हो गया था उन पर!

पौधों में लिंग होते हैं या नहीं, उस समय के विज्ञान के सामने यह एक बड़ा सवाल था, हालांकि प्राचीन लोग कृत्रिम परागण करना जानते थे। आज हमें भले ही आश्चर्य लगे, लेकिन 150 वर्ष पहले तक पौधों का संकरण, विज्ञान की अंतिम उपलब्धि माना जाता था। 1694 ई. में जर्मनी के रूडोल्फ याकूब कामेरारियस ने 'पौधों के लिंग' नामक लिखी पुस्तक में पौध प्रजनन से संबंधित तब तक के उपलब्ध वैज्ञानिक तथ्यों और अपने अध्ययन को संकलित और सूत्रबद्ध किया था। इस पुस्तक में सबसे महत्त्वपूर्ण बात थी, बीजों की उत्पत्ति के लिए परागकणों की उपयोगिता। उन्होंने साफ-साफ शब्दों में लिखा था कि पराग के बिना बीज नहीं बन सकते।

महान वनस्पति विज्ञानी स्वीडन के कैरोल लीनियस (1707-1778 ई.), जो पेशे से डॉक्टर थे, ने बाइस वर्ष की उम्र में पौधों के लिंग पर एक लेख लिखा था। उनकी महान कृतियां हैं– पौधों के वर्गीकरण पर चौदह खंडों में लिखी गई दो पुस्तकें। पौधों का वर्गीकरण उन्होंने उनके लिंग के आधार पर किया है। उनके पहले के विज्ञानी पौधों के वर्गीकरण का आधार उनके स्वभाव, निवास स्थान, जीवनकाल आदि मानते थे, लेकिन उनका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान है– पौधों की प्रजातियों का द्विपदीय नामकरण। यह वैज्ञानिक नामकरण की पद्धति है, जो आज भी प्रचलित है। उन्होंने पौधों के संकरण पर भी काफी प्रयोग और अध्ययन किया था और कई पौधों का संकर प्राप्त किया था। फलस्वरूप उन्हें लगा था कि विभिन्न प्रजातियों के बीच संकरण के कारण नई प्रजातियां अभी भी जन्म ले रही हैं, लेकिन एक धर्मपरायण व्यक्ति होने के नाते पूर्व धार्मिक मान्यताओं को त्यागना उनके लिए बहुत ही मुश्किल था। 1751 ई. में प्रकाशित 'वनस्पति दर्शन' में उन्होंने लिखा है कि प्रजातियां उतनी ही हैं, जितनी सृष्टि के आरंभ में रची गई थीं, लेकिन बाद में वे भी मानने लगे थे कि सभी प्रजातियां एक ही बार नहीं रची गई हैं और उनकी रचना की प्रक्रिया अभी भी चल रही है। जीवन की संध्या में उन्होंने अपने एक दोस्त को लिखा था, "माना कि ईश्वर ने इकाई की रचना दो के पहले की और दो की रचना चार के पहले। हो सकता है, ईश्वर ने पहले सरल जीवों की रचना की, फिर बाद में नई प्रजातियों को पाने के लिए उन्होंने उसे आपस में मिला दिया होगा।" स्मरण रहे, लीनियस, चार्ल्स डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत की स्थापना से बहुत पहले, करीब एक सदी पहले ऐसी बातें कर रहे थे।

फिर भी वे संकरण की संभावना को अपवाद ही मानते थे, लेकिन उस समय भी कुछ ऐसे लोग मौजूद थे, जो सभी जीवों के बीच रक्त संबंध की बातें करते थे। यह दुर्भाग्य ही है कि उनकी कृतियों का उतना प्रचार-प्रसार नहीं हो पाया, जितना कि लीनियस की कृतियों का। ऐसे लोगों में सबसे प्रमुख हैं– स्वीडिश विज्ञान अकादमी के अध्यक्ष जोसेफ गोटेलिव केलरायटर। उन्होंने तंबाकू, गेहूं आदि के पौधों पर योजनाबद्ध तरीके से संकरण का प्रयोग किया, जो आधुनिक पौध संकरण के प्रयोगों के काफी निकट थे। उनका नाम पौध संकरण पर सफल प्रयोगों के कारण ही विख्यात नहीं हुआ है, बल्कि प्रथम संकर पीढ़ी में अधिक उत्पादनशीलता यानी संकर प्रभाव की खोज उन्होंने ही की थी। फसलों में संकर प्रभाव का उपयोग आजकल उपज बढ़ाने में किया जाता है, लेकिन केलरायटर के समकालीन विज्ञानी उनकी कृतियों का सही मूल्यांकन नहीं कर पाए। कुछ लोगों ने तो उनके प्रयोगों से प्राप्त परिणामों को भी संदेह की नजर से देखा और अंत में उन्हें

बिल्कुल ही भुला दिया गया। इसी कड़ी में दो और विज्ञानियों का नाम आता है। ये हैं– कार्ल फ्रेडरिक गेर्टनर और शार्ल नाउडीन, जिन्होंने 19वीं सदी के मध्य में पौधों की कई प्रजातियों पर संकरण का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया था। अपने प्रयोगों के आधार पर उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष, जैसे– युग्मकों की शुद्धता, प्रथम संकर पीढ़ी की एकरूपता, दूसरी संकर पीढ़ी की विविधता, संकरण प्रभाव आदि पेश किया था। इस तरह 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक आनुवंशिकता के बारे में हमारा ज्ञान यहीं तक सीमित था, यानी 'रक्त सम्मिश्रण' का सिद्धांत।' इस सिद्धांत के अनुसार जब एक ही प्रजाति की दो किस्मों में संकरण कराया जाता है, तो उनके रक्त मिलजुल जाते हैं।

फिर भी 18-19वीं सदी में किए गए इन प्रयोगों ने वैज्ञानिक पौध प्रजनन की पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। वैज्ञानिक पौध सुधार का स्वर्ण विहान होने ही वाला था।

चार्ल्स डार्विन जीवविज्ञान की दुनिया में एक नया युग लेकर आए। वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने जीवों में क्रमिक विकास, प्रकृति विज्ञान की प्रगति और प्रजनन के बारे में हमें विस्तार से समझाया। उनके अकाट्य तर्कों और ठोस प्रमाणों ने जीवजगत् की अपरिवर्तनीयता और निरंतरता के युगों से चले आ रहे सिद्धांतों को ध्वस्त कर दिया। 1859 में प्रकाशित प्रसिद्ध पुस्तक 'प्राकृतिक चयन द्वारा प्रजातियों की उत्पत्ति' में उन्होंने जीवों की प्रजातियों में क्रमिक विकास को संचालित और निर्देशित करने वाले कारकों की विस्तार से व्याख्या की है। उन्होंने यह भी बताया कि कैसे जीवों की प्रजातियों में सूक्ष्म और बेमानी-सी लगनेवाली परिवर्तित विशेषताएं जमा होती हैं और बार-बार चयन के फलस्वरूप आगामी पीढ़ियों में हस्तांतरित होती हैं, अगर उन्हें वैसा वातावरण, जिसमें उन विशेषताओं का विकास हुआ, बना रहे। अतः चयन प्रक्रिया द्वारा मनचाहे परिवर्तनों को स्थिर रखा जा सकता है, अनचाहे जीव रूपों को छोड़ा जा सकता है और

चार्ल्स डार्विन

फसलों और पालतू जंतुओं की नई किस्मों को 'सृजित' किया जा सकता है।

डार्विन का महानतम योगदान यह है कि आदमी में जीवों की प्रजातियों में परिवर्तन करने की क्षमता है। उनके विकासवाद के सिद्धांत, जिसे आज डार्विनवाद कहा जाता है, ने जीवविज्ञान को एक नया स्वरूप प्रदान किया था। आगामी दशकों में जीवविज्ञान की प्रगति डार्विनवाद की छाया में ही हुई। डार्विनवाद ने जीवविज्ञान में नये-नये अविष्कारों का रास्ता खोल दिया और दुनिया के विज्ञानियों को नये-नये तथ्यों को एकत्र करने की प्रेरणा दी। जीवविज्ञान के क्षेत्र में ही नहीं मनुष्य के पूरे चिंतन जगत् में डार्विन एक प्रचंड उथल-पुथल शुरू कर गए हैं। दर्शन चिंतन में, समाजशास्त्रीय चिंतन में और अर्थ-नीतिक चिंतन में भी वे एक आंधी-सी उठा गए हैं। उस आंधी में पुरानी, गलत-सलत धारणाएं सड़े पत्तों की तरह उड़ गईं। मनुष्य सत्य को पहचानने का रास्ता देखने लगा– विज्ञान के सत्य को, जीवन के सत्य को पहचानने का रास्ता। उस सत्य को पहचानने का, जिसे पहचानकर मनुष्य और भी बड़ा, बहुत बड़ा हो सकेगा।

लेकिन उनके सिद्धांत में कुछ ठोस खामियां थी। उनके विकासवाद के सिद्धांत में प्राकृतिक चयन की बात तो हर किसी की समझ में आती थी। प्रकृति के अंदर हम देखते ही हैं कि सभी प्राणी क्रम परंपरा में अपनी संतानें पैदा करते हैं, लेकिन सभी संतानें जीवित नहीं रहती हैं। उनके वीच जीने के लिए संघर्ष होता है और इस जीवन संघर्ष में वही विजयी होता है, जिसमें कोई विशेषता औरों से बेहतर होती है। इस विशेषता के कारण वह न केवल अपने जीवन की रक्षा करने में सफल होता है, बल्कि इस विशेषता को वह अपने बाल-बच्चों को विरासत में देता है। ऐसा कई पीढ़ियों तक लगातार होने से यह विशेषता और भी स्पष्टतर होती जाती है और अंत में उस वंश को एक नई धारा मिल जाती है। इस तरह एक नई धारा मिल जाती है। इस तरह एक नई शाखा या प्रजाति की सृष्टि होती है। दूसरे शब्दों में, जो सबसे अच्छा और योग्य है, वही जीवित रह पाएगा। अतः 'सर्वोत्तम की उत्तरजीविता (सरवाइवल ऑफ द फिटेस्ट) की बात तो हर किसी की समझ में आती थी, लेकिन 'सर्वोत्तम का आगमन' (अराइवल ऑफ द फिटेस्ट) कैसे होता है, इस प्रश्न का कोई जवाब डार्विन के पास नहीं था। क्या जवाब देते वे?क्या वे यह कहते कि जीवों के शरीर में जो भिन्नता आती है, जो गुण या लक्षण विकसित होते हैं, जिनकी वजह से जीव', जीवन संघर्ष में विजयी होते हैं, वे सब अचानक ही होते हैं, संयोग से ही होते हैं, इनके कारण नहीं जाने जा सकते।

डार्विन का सिद्धांत आनुवंशिकता के 'रक्तमिश्रण' के सिद्धांत पर आधारित था और इस सिद्धांत के आलोक में जीवों के क्रमिक विकास की व्याख्या नहीं की जा सकती थी। अगर

मेंडेल

आनुवंशिकता तरल द्रव्यों का मिश्रण है, तो डार्विन का सिद्धांत सही नहीं हो सकता था, क्योंकि प्रत्येक नया और लाभदायक परिवर्तन अगली पीढ़ियों में धीरे-धीरे गायब होता जाएगा। स्वयं डार्विन भी अपने सिद्धांत की इस कमजोरी से अवगत थे। उन्होंने अपने सबसे बड़े समर्थक और अनुयायी थॉमस हक्सले से इस समस्या पर चर्चा की थी और उन्हें लिखा था, "मुझे अस्पष्ट और मोटे तौर पर लगने लगा है कि दो विशिष्ट और विभिन्न जीव रूपों के बीच प्रजनन और संकरण में शायद किसी प्रकार का मिश्रण होता होगा, पूर्ण संयोजन नहीं।"

इस प्रश्न का उत्तर छुपा था, डार्विन के समकालीन ग्रिगोर मेंडेल के आनुवंशिकता के नियमों में! 1865 में मेंडेल ने मटर के पौधों पर उत्कृष्ट प्रयोगों द्वारा आनुवंशिकता के सिद्धांत प्रतिपादित करके आनुवंशिकता की इकाई, वंशाणु या जीन की परिकल्पना की और बताया कि जीवों की चारित्रिक विशेषताएं एक सरल गणितीय अनुपात में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होती हैं। दूसरे शब्दों में जीवों में वंशानुगत गुणों का पीढ़ी दर पीढ़ी प्रवाह क्यों और कैसे होता है, यह मेंडेल के सिद्धांतों के आलोक में समझा जा सकता है। मेंडेल के आनुवंशिकता के सिद्धांतों ने डार्विनवाद को एक ठोस आधार प्रदान किया। यह कैसी विडंबना है कि जीवविज्ञान की दो महान और युगप्रवर्त्तक महाविभूतियां समकालीन होते हुए भी एक-दूसरे की कृतियों से पूर्णतः अनजान थीं। काश! डार्विन ने मेंडेल का शोधनिबंध पढ़ा होता! इसे जीवविज्ञान की महानतम त्रासदी नहीं तो और क्या कहा जा सकता है।

मानव जाति की विचारधारा पर मेंडेलवाद ने जितना गहरा प्रभाव डाला है और मानव मस्तिष्क को जितना झकझोरा है, उतना शायद ही किसी और विज्ञान ने किया हो। इसने 20वीं सदी के उषाकाल में एक नए जीवविज्ञान को जन्म दिया, जिसे आनुवंशिकी (जेनेटिक्स) या जीन विज्ञान कहा जाता है। आज जीन मानव सभ्यता और इतिहास की दिशा और दशा बदलने की क्षमता

रखता है और 21वीं सदी की दहलीज पर उसने ऐसा करना शुरू भी कर दिया है। 'जीन,' आज मानव कल्याण का मूलमंत्र बन गया है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि 21वीं सदी में जीन की तूती बोलेगी और इसी का राज चलेगा।

लेकिन मेंडेल का दुर्भाग्य ऐसा था कि जीते जी उन्हें किसी ने भी नहीं पहचाना और न ही सराहा, ख्याति तो दूर की बात है। वे 37 वर्षों की गुमनामी के बाद अपनी मृत्यु के 18 वर्षों के बाद प्रकाश में आए और सारी दुनिया पर छा गए। आज भी हम उनके व्यक्तित्व के बारे में बहुत कम जानते हैं। आखिर कौन थे, मेंडेल? उनका जीवन कैसा था? कैसे उन्होंने आनुवंशिकता के नियमों की खोज की? और कौन-कौन से काम किए उन्होंने? उनका बुढ़ापा कैसा बीता? आइए, हम मेंडेल को जानने और पहचानने की कोशिश करें।

18-19वीं सदी के मध्य यूरोप में स्थित एक छोटा-सा राज्य था, 'उत्तरी मोराविया।' उस समय यह ऑस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य का अंग था। उत्तरी मोराविया में एक छोटा-सा कस्बा था— हाइत्सेनडोर्फ। यह मध्य यूरोप का एक पिछड़ा हुआ और कृषि प्रधान इलाका था। हाइत्सेनडोर्फ अब 'हिचिंत्से से' कहलाता है और चेक गणराज्य में है। उस समय हिचिंत्से में एक साधारण किसान परिवार रहता था। यह परिवार था, मेंडेल दंपत्ति का। उनकी एक दो साल की गुड़िया जैसी सुंदर बेटी थी। नाम था— वेरोनिका। परिवार का गुजर-बसर खेतीबाड़ी और मधुपालन से अच्छी तरह चल जाता था। एंटन मेंडेल एक जागरूक किसान थे। अपने खेती के एक हिस्से में उन्होंने फलों के भी कुछ पेड़ लगा रखे थे। इससे भी उन्हें कुछ अतिरिक्त आमदनी हो जाती थी। पत्नी रोजिना श्विटलिच मेंडेल एक धर्मपरायण महिला थीं। घर के कामों के अलावा वे एंटन के कामों में भी हाथ बंटाती थीं, लेकिन दोनों पति-पत्नी बहुत उदास रहते थे। बात यह थी कि उनकी पहली दोनों पुत्रियों की मृत्यु बचपन में ही बीमारी के कारण हो गई थी।

22 जुलाई 1822। एंटन मेंडेल और उनकी पत्नी बड़े ही खुश थे। होते भी क्यों न?आज उनके घर एक पुत्र ने जन्म लिया था! उनकी बड़ी इच्छा थी कि भगवान यीशु उन्हें एक बेटा दे दें! बस और कुछ नहीं चाहिए! बालक का नाम रखा गया— योहान! योहान मेंडेल! योहान को उन्होंने बड़े लाड़-प्यार से पाला। उन्होंने सोच लिया था कि योहान को वे खूब पढ़ाएंगे, ताकि बड़ा होकर वह कुछ ढंग का आदमी बन सके! वे नहीं चाहते थे कि योहान भी उन्हीं की तरह एक साधारण किसान की जिंदगी जीए। एंटन आठ वर्षों तक सेना में फौजी रह चुके थे। उन्होंने दुनिया देखी थी और जानते थे कि अच्छी और इज्जत की जिंदगी क्या होती है।

योहान जब पांच वर्ष का हुआ तो उसे पास के ही एक स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा गया। कहते हैं, 'होनहार बीरवान के होत चिकने पात!' वह बचपन से ही तेज और बुद्धिमान था। वह मेहनती भी बहुत था! वह स्वभाव से बड़ा जिज्ञासु था, परंतु थोड़ा-थोड़ा शर्मीला भी। बहुत बातें करने से कतराता था वह! स्कूल से लौटने और होमवर्क करने के बाद वह पिता के कामों में मदद करता था। इससे एंटन को खुशी होती थी। छुट्टियों में खेती और मधुमक्खी पालन की बारीकियों को वह बहुत गौर से देखता और समझने की कोशिश करता था। इस बारे में वह अकसर अपने पिता से बालसुलभ सवाल भी करता था, लेकिन एंटन बड़े सहज भाव से उसके सवालों के जवाब देते और समझाते थे।

समय बीतता गया! योहान स्कूल की परीक्षा में अव्वल आया। उस समय वह 11 साल का हो चुका था। उसे आगे की पढ़ाई के लिए लेपनिक के एक स्कूल में भेजा गया। यह स्कूल पूरे इलाके में सबसे अच्छा माना जाता था। यहां सामान्य विषयों के अलावा विज्ञान, प्राकृतिक इतिहास, बागवानी और मधुमक्खी पालन भी पढ़ाया जाता था, लेकिन लेपनिक हिचिंत्से से 20 किलोमीटर दूर था। योहान को इतनी दूर भेजने में एंटन शुरू में कुछ झिझके भी थे, परंतु अपने एक दोस्त, फादर श्राइबर की सलाह पर वे इसके लिए तैयार हो गए। श्राइबर स्थानीय मठ के स्कूल में प्रकृति विज्ञान और इतिहास पढ़ाते थे। उन्हें बागवानी और मधुमक्खी पालन के अलावा पौधों में कृत्रिम संकरण का भी अच्छा ज्ञान था। एंटन बागवानी और मधुमक्खी पालन पर हमेशा उनसे सलाह-मशविरा किया करते थे। पादरी योहान से काफी प्रभावित थे। वे होनहार बालकों के लिए उच्च शिक्षा को समाज के विकास के लिए बहुत जरूरी तत्त्व मानते थे। उन्हें यह देख कर बहुत दुःख होता था कि समाज के होनहार और तेज बच्चे धन की कमी के कारण पढ़ नहीं पाते हैं। समाज को इसकी व्यवस्था करनी चाहिए।

योहान इस बार भी स्कूल की परीक्षा में अव्वल आया। आगे की पढ़ाई के लिए अब उसे दूर स्थित किसी उच्च विद्यालय में दाखिला लेना था। योहान को उच्च शिक्षा पाने की बड़ी ललक थी। पिता एंटन भी यही चाहते थे, लेकिन परिवार की माली हालत उन्हें ऐसा करने की इजाजत नहीं दे रही थी। बड़ी बेटी वेरोनिका की शादी करना उनके लिए ज्यादा जरूरी था। इसके लिए कई सालों से वे एक सुयोग्य लड़के की तलाश कर रहे थे। बात बन गई थी। उन्होंने वेरोनिका की शादी अलोइस स्ट्रम नाम के एक लड़के से कर दी। योहान को आगे पढ़ाने में भी उन्होंने बड़ी हिम्मत दिखाई। अपने दोस्तों से कुछ रुपये उधार लेकर योहान का नाम त्रोपाउ के इंपीरियल रॉयल

जिमनाजियम में लिखाया गया। त्रोपाउ का यह ग्रामर स्कूल हिचिंत्से से 70 किलोमीटर दूर था। उस जमाने में यह इलाके का सर्वश्रेष्ठ स्कूल था। यहां के सभी शिक्षक बहुत योग्य थे। एक साधारण किसान परिवार के बेटे का वहां पढ़ना बहुत बड़ी बात थी। योहान भी परिवार की माली हालत को अच्छी तरह समझते थे। उन्हें कभी-कभी लगता था कि वे पिता पर नाहक ही बोझ बनते जा रहे हैं। पिता का आर्थिक भार कम करने और अपनी पढ़ाई जारी रखने के ख्याल से उन्होंने छोटे बच्चों को ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर दिया। ट्यूशन से हुई आमदनी वे अपनी पढ़ाई पर खर्च करने लगे। इस तरह उनकी पढ़ाई ठीकठाक चलने लगी।

इसी बीच 1838 में उनके परिवार में एक बड़ा हादसा हो गया। उस समय उनकी उम्र 16 वर्ष की थी। उनके पिता खेतों में काम कर रहे थे। अचानक पास के पेड़ से एक मोटी डाली टूटकर उन पर आ गिरी। उन्हें बहुत गहरी चोट लगी और वे बुरी तरह घायल हो गए। काफी दवा-दारू कराने के बाद भी वे ठीक नहीं हो सके और बीमार रहने लगे। उनकी पसलियां टूट गई थीं। अब उनसे खेतीबाड़ी का काम नहीं हो सकता था। परिवार पर तो जैसे संकट का पहाड़ ही टूट गया था। खबर पाते ही योहान घर आए। पिता की हालत देखकर वे बड़े दुःखी हुए, लेकिन वे कर भी क्या सकते

थे? कुछ दिन घर पर रुककर वे त्रोपाउ चले गए। परिवार की माली हालत बदतर होती जा रही थी। कभी-कभी तो पूरे परिवार को आधा पेट खाकर ही सोना पड़ता था। इतनी तंगी के बावजूद एंटन योहान की पढ़ाई बाधित होने देना नहीं चाहते थे, लेकिन वे लाचार थे। स्थिति को समझते हुए योहान ने और भी अधिक बच्चों को ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर दिया। इसमें उन्हें काफी समय देना पड़ता था। साथ ही वे मन लगाकर पढ़ते भी रहे। अभावों में जीना उन्होंने सीख लिया था। खैर! किसी तरह स्कूल की पढ़ाई पूरी हुई। इस बार वे परीक्षा में पहला स्थान नहीं पा सके, लेकिन अंक उन्हें अच्छे ही मिले थे।

अब योहान की भूख बहुत बढ़ गई थी। यह भूख थी, ज्ञान की! सब कुछ जान लेने की! वे कॉलेज की पढ़ाई भी करना चाहते थे, लेकिन यह संभव होता नहीं दिख रहा था। परिवार से आर्थिक मदद की उम्मीद करना बेमानी होता। पिता काफी बीमार रहने लगे थे और बहुत कमजोर हो गए थे। खेतीबाड़ी भी चौपट हो गई थी। उन्होंने खेती का कुछ हिस्सा बटाई पर बड़े दामाद को दे दिया था। अब वे ही परिवार की जिम्मेदारी निभाने लगे थे। आधी खेती उन्होंने बेच दी थी। इससे प्राप्त रुपयों का कुछ हिस्सा उन्होंने छोटी बेटी तेरेंजिया को दे दिया था। ऐसा उन्होंने इसलिए किया था, ताकि वह परिवार की अन्य जरूरतों में खर्च न होकर बेटी के दहेज और शादी में काम आ सके। उन्हें छोटी बेटी की शादी की चिंता बहुत सताने लगी थी। उसकी शादी करके वे दुनियादारी से शीघ्र मुक्त होना चाह रहे थे।

योहान के जीवन में ये दिन कठिनाइयों और दुःखों से भरे हुए थे। चारों ओर अंधेरा था और आगे कोई रास्ता नजर नहीं आता था। परिवार और पढ़ाई के बारे में सोच-सोचकर वे बहुत परेशान हो जाते थे। वे अपनी आगे की पढ़ाई के लिए बड़े-से-बड़े त्याग करने को तैयार थे, लेकिन केवल ट्यूशन के बल पर यह संभव नहीं था। नामांकन के लिए तो पैसों का इंतजाम किसी प्रकार किया जा सकता था, लेकिन और खर्चों का इंतजाम? वे बहुत चिंतित रहने लगे। बड़ी बहन और बहनोई से भी उन्होंने अपनी आगे की पढ़ाई के बारे में चर्चा की और कुछ मदद करने को कहा, लेकिन उन लोगों ने मुंह फेर लिया।

एक दिन भाई को बहुत चिंतित देखकर तेरेंजिया ने योहान से पूछा, "क्या बात है भाई? देखो! मैं तुमसे बहुत छोटी हूं, लेकिन इधर कई दिनों से देख रही हूं कि तुम बातें भी बहुत कम करने लगे हो। बस चिंतित और परेशान नजर आते हो। मैं भी तो जानूं कि कौन-सी चिंता तुम्हें खाए जा रही है? शायद मैं कुछ कर सकूं और तुम्हारी परेशानी बांट सकूं!" छोटी बहन की बात सुनकर योहान

की आंखों से आंसू फूट पड़े। "क्या बताऊं बहन!" उन्होंने कहा, "घर और पिताजी की हालत तो तुम देख ही रही हो। आगे पढ़ना चाहता हूं, लेकिन पैसों की कमी के कारण यह संभव नहीं दिखता! नाम लिखाने के लिए तो किसी तरह इंतजाम हो जाएगा, परंतु पढ़ाई जारी रखने के लिए केवल ट्यूशन से होनेवाली आमदनी से काम नहीं चलनेवाला। क्या किया जाए, समझ में नहीं आ रहा है! लगता है, पढ़ना-लिखना हम जैसों के भाग्य में लिखा ही नहीं गया है।" छोटी बहन ने उनकी बड़ी हिम्मत बंधाई। कहा, "देखो, पिता जी ने मुझे कुछ पैसे दहेज के लिए दिए हैं। अभी मैं इसमें से कुछ निकालकर तुम्हें दे सकती हूं। कॉलेज में नाम लिखा लो और पढ़ाई शुरू कर दो। आगे की आगे देखी जाएगी! ऊपरवाला भगवान भी तो सब देख रहा है! जो भी होगा, ठीक ही होगा!" योहान को तेरेंजिया की बातों में उम्मीद की एक किरण-सी दिखाई दी। सोचा, ठीक ही कहती है! भविष्य और भाग्य को कौन जानता है! उन्होंने कॉलेज में दाखिला ले लिया।

योहान ने 1840 में ओलमुत्स विश्वविद्यालय के ब्रह्मविद्यापीठ (थियोसोफिकल इंस्टीट्यूट) में दाखिला ले लिया। वे वहां 1943 तक रहे। वे खूब मन लगाकर पढ़ने लगे। शिक्षकों के लैक्चर वे बड़े ध्यान से सुनते और नोट करते थे। जल्द ही उन्होंने अपनी प्रतिभा और व्यवहार से शिक्षकों और सहपाठियों को प्रभावित कर लिया। विज्ञान और गणित उनके प्रिय विषय थे। अपनी पढ़ाई जारी रखने के लिए उन्हें काफी समय ट्यूशन में भी देना पड़ता था। फिर भी उनकी पढ़ाई ठीक-ठाक चलती रही। पहले दो वर्षों तक कोई खास दिक्कत नहीं हुई। हां, कभी-कभार घर का समाचार पाकर वे परेशान अवश्य हो जाते थे, लेकिन तीसरा साल ठीक नहीं रहा। कड़ी मेहनत, ट्यूशन और कम भोजन के कारण उनका स्वास्थ्य दिन-ब-दिन गिरने लगा। वे अकसर बीमार भी हो जाते थे। पैसों की कमी तो रहती ही थी। उन्हें लगने लगा था कि इस तरह तो काम नहीं चल सकेगा। विद्यापीठ की पढ़ाई पूरी करना बहुत मुश्किल हो रहा था। इस बात की चर्चा उन्होंने अपने नजदीकी दोस्तों से की। उन्होंने पढ़ाई छोड़ देने का निश्चय कर लिया था। अधिक-से-अधिक क्या होगा? घर की खेती और मधुपालन से जिंदगी किसी तरह चल ही जाएगी। किसी तरह यह बात उनके शिक्षकों के कानों तक पहुंच गई।

उन दिनों छात्रों और शिक्षकों का संबंध बहुत अच्छा हुआ करता था। मेधावी छात्रों का तो वे खास ख्याल रखते थे। यथासंभव उनकी मदद भी वे कर देते थे। एक दिन उनके भौतिकी के प्रोफसर फ्रेडरिक फ्रांत्स ने योहान को बुलाया और पूछा, "योहान! सुना है, तुम पढ़ाई छोड़ना चाहते हो?अगर यह सच है, तो तुम मुझे इसका कारण बताओ। शायद मैं तुम्हारी कुछ मदद कर सकूं।"

फ्रांत्स, मेंडेल को अच्छी तरह पहचान चुके थे। उनका ख्याल था कि मेहनत और प्रतिभा में यह किशोर विलक्षण और अतुलनीय है। यदि यह विश्वविद्यालय की पढ़ाई पूरी कर लेता है, तो समाज को कुछ दे सकता है। मेंडेल की आंखें नम हो गईं। "सर! आगे और पढ़ना अब मेरे बस की बात नहीं है!" उन्होंने कहा, "आगे पढ़ने की तो मेरी बड़ी इच्छा है, लेकिन परिवार की माली हालत ऐसी नहीं है कि मैं अपनी पढ़ाई पूरी कर सकूं। पिताजी बहुत बीमार रहते हैं। वे अपाहिजों जैसे हो गए हैं। मुझे मेरे बहनोई को सौंप दिया। बहन-बहनोई मेरी मदद करना नहीं चाहते हैं। छोटी बहन की मदद से यहां तक पहुंच पाया हूं!"

स्थिति दुःखद थी। फ्रांत्स गंभीर हो गए। उन्होंने मेंडेल को ट्यूशन करने की सलाह दी, लेकिन मेंडेल के लिए और अधिक ट्यूशन करना संभव नहीं था। आखिरी क्लास का पूरा साल बरबाद हो गया था। बीमारी के कारण उन्हें घर जाना पड़ा था। प्रोफेसर चाहते थे कि यह किशोर किसी तरह विश्वविद्यालय की पढ़ाई समाप्त कर ले। उन्होंने मेंडेल को राय दी कि अगर वह जीवन में पढ़-लिख कर कुछ करना चाहता है, तो मठ में दीक्षा ले ले। मोराविया में 1350 में स्थापित संत अगस्तिन धर्मसंघ का ब्रून में संत थॉमस चर्च था। उनके विचार में इस मठ के अध्यक्ष किरील नैप दयालु और विद्वान तो थे ही, उनके विचार भी काफी प्रगतिशील थे। एक कैथोलिक होने के बावजूद वे वैज्ञानिक विचारों को बढ़ावा देते थे। फ्रांत्स, किरील नैप को अच्छी तरह जानते थे। अगर मेंडेल इसके लिए तैयार हो जाता है, तो मठ में उसका जीवनयापन और पढ़ाई के साथ-साथ उसे कुछ आर्थिक लाभ भी हो जाया करेगा।

मेंडेल को जैसे तिनके का सहारा मिल गया। उन्होंने मठ में दीक्षा लेने के लिए हामी भर दी। उनका भविष्य तय हो गया था। कुछ ही समय के बाद छोटी बहन तेरेंजिया की शादी बिना दहेज के ही ल्युपाल्ड शिंडलर नामक युवक से हो गई। ये मेंडेल के जीवन में खुशी के क्षण थे। बाद में मेंडेल ने लिखा था, "कभी-कभी जीवन में मैं एक ऐसा ठहराव पाने के लिए असहाय अनुभव करता था, जो मुझे इस कटु जीवन से मुक्ति दिला दे!"

1843 में योहान मेंडेल को प्रोफेसर फ्रांत्स की सिफारिश पर चर्च में प्रवेश मिल गया। इस चर्च के अधीन ब्रह्मविद्या (थियोसोफिकल) कॉलेज में वे थियोलॉजी का अध्ययन करने लगे। ब्रून का संत थॉमस चर्च उस जमाने में विज्ञान और संस्कृति का केंद्र माना जाता था। कई नामीगिरामी दार्शनिक, संगीतज्ञ, गणितज्ञ, खनिज विज्ञानी और वनस्पतिशास्त्री इसके सदस्य थे। वे सभी अनुसंधान और शिक्षण से गंभीर रूप से जुड़े थे। इसके पुस्तकालय में प्रकृति विज्ञान की बहुमूल्य पुस्तकें और पांडुलिपियां उपलब्ध थीं। एक खनिज संग्रहालय, हरबेरियम और वानस्पतिक उद्यान भी था। चर्च का वातावरण बिल्कुल शैक्षिक था। मेंडेल को इसी की तलाश थी। वे सही जगह पर पहुंच गए थे। उन्होंने लिखा भी है कि चर्च में ऐसे वातावरण के कारण ही प्रकृति विज्ञान में उनकी रुचि जागी।

यह अजीब लगता है कि जब कैथोलिक चर्च इतने विज्ञान विरोधी थे, तो मठों को वैज्ञानिक विचारों को प्रोत्साहन देने की अनुमति कैसे दी जाती थी। बात यह है कि उन दिनों मठ बड़े शक्तिशाली स्थान हुआ करते थे। यह जरूरी नहीं था कि जो उन्हें कहा जाए, वे वही करें। स्थानीय बिशप मठों की अवज्ञा से बहुत नाराज रहते थे। किरील नैप से तो वे विशेष रूप से नाराज थे, लेकिन नैप का काम करने का अपना ही अंदाज था। वे बिशप की नहीं सुनते थे। उन्हें जो ठीक लगता था, वे वही करते थे।

मठ में योहान का बापतिस्मा, पुरोहिताभिषेक हुआ! नया नाम रखा गया– 'ग्रिगोर!' यहां आकर वे बहुत ही खुश थे। यहां पढ़ने-लिखने का माहौल बहुत अच्छा था। ग्रिगोर वहां धर्मशास्त्र और पूर्वी प्राचीन भाषाओं का अध्ययन करने लगे। कॉलेज में अमूमन प्रकृति विज्ञान पर व्याख्यान मालाएं आयोजित की जाती थीं। मेंडेल उन व्याख्यानों को बड़े ध्यान से सुनते थे। 1846 में उन्होंने

फलों और अंगूर की खेती पर बड़े रोचक व्याख्यान सुने। वानस्पतिक उद्यान, हरबेरियम और खनिज संग्रहालय की देखरेख का काम उन्हें ही सौंपा गया था। वहां वे फादर मैथियस क्लासेल से प्रभावित थे। क्लासेल वनस्पतिशास्त्री थे और पौध संकरण उनका खास शौक था।

6 अगस्त 1847 में मेंडेल को पुजारी का पद मिला। अब वे ब्रदर ग्रिगोर मेंडेल कहलाने लगे। उनका मुख्य काम मठ के धार्मिक क्रियाकलापों से जुड़ा था। उन्हें एक पुरोहित को दी जानेवाली सारी सुविधाएं प्राप्त थीं। यहां का खाना-पीना उन्हें बहुत अच्छा लगता था। वे जमकर खाते थे। सुस्वादु भोजन उनकी खास कमजोरी थी और शतरंज उनका पसंदीदा खेल! कुछ दिनों तक पुरोहिती ठीकठाक चली, लेकिन मठ के लोगों को जल्द ही जाहिर हो गया कि मेंडेल इस काम के लिए नहीं बने हैं। अतः 1849 में उन्हें ग्नैम भेज दिया गया। वहां मठ का एक मिडिल स्कूल था। उन्हें वहीं पढ़ाने का काम सौंपा गया। एक स्थानापन्न शिक्षक के रूप में! यह भी किरील नैप की कृपा का फल था। किरील नैप तब तक मोराविया के उच्चशिक्षा निदेशक बन चुके थे। स्कूल में मेंडेल गणित और भाषा पढ़ाते थे। शीघ्र ही वे छात्रों के बीच बहुत लोकप्रिय हो गए, लेकिन स्थायी तौर पर शिक्षक होने के लिए राज्य शिक्षा सेवा सर्टिफिकेट की परीक्षा पास करनी होती थी। इस परीक्षा का संचालन वियना विश्वविद्यालय करता था। मठ प्रशासन से अनुमति लेकर 1850 में उन्होंने भौतिकी और प्रकृति विज्ञान की परीक्षा दी, लेकिन वे फेल कर दिए गए। इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि सबसे कम अंक उन्हें जीवविज्ञान में मिले थे। पृथ्वी की उत्पत्ति से जुड़े एक सवाल का जवाब उन्होंने कांट और लैपलेस के सिद्धांतों के आलोक में दिया था। यह सिद्धांत पवित्र 'बाइबिल' की मान्यताओं के विरुद्ध है। एक मठवासी संत से ऐसे उत्तर की उम्मीद नहीं की जा सकती थी। फिर मौखिक परीक्षा में भी वे फेल हो गए या यों कहें कि उन्हें फेल कर दिया गया। मेंडेल ने कोई औपचारिक शिक्षा नहीं पाई थी। वे स्वशिक्षित थे, लेकिन एक शिक्षक के रूप में वे काफी सफल थे। छात्रों में वे बहुत लोकप्रिय हो गए थे। 1851 में एक प्रोफेसर के अचानक बीमार हो जाने के कारण उन्हें ब्रून के एक तकनीकी कॉलेज में पढ़ाने को कहा गया। यहां भी उन्होंने कुछ महीनों तक पढ़ाया। इसके लिए कॉलेज के निदेशक ने उन्हें पारिश्रमिक के अलावा प्रशंसापत्र भी दिया।

वियना विश्वविद्यालय के परीक्षक भी मेंडेल की लगन और योग्यता से काफी प्रभावित थे। उचित ज्ञान की कमी के कारण ही उन्हें फेल किया गया था। परीक्षा बोर्ड के अध्यक्ष ने किरील नैप को एक पत्र लिख दिया। इस पत्र में मेंडेल को प्रकृति विज्ञान में उच्च शिक्षा के लिए किसी विश्वविद्यालय में भेजने की अनुशंसा की गई थी। इस पत्र के जवाब में तीन अक्तूबर 1851 को

किरील नैप ने लिखा–

"ब्रदर ग्रिगोर की उच्च शिक्षा के संबंध में आपके पत्र ने मुझे यह निर्णय लेने को बाध्य किया है कि उन्हें उच्च शिक्षा के लिए वियना भेजा जाए। उनकी शिक्षा के लिए आवश्यक खर्च वहन करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।" और बिशप को इसकी सफाई देते हुए लिखा–

"जहां ब्रदर ग्रिगोर मेंडेल एक पुजारी के काम के लिए अनुपयुक्त हैं, वहीं उनकी प्राकृतिक इतिहास और विज्ञान के अध्ययन में असाधारण बौद्धिक क्षमता के पूर्ण व्यावहारिक विकास के लिए यह आवश्यक और अपेक्षित होगा कि उन्हें वियना विश्वविद्यालय भेजा जाए, जहां अध्ययन का उन्हें पूरा अवसर मिलेगा।"

बिशप ने नैप के प्रस्ताव पर इस शर्त पर सहमति जताई, "ऊपर नामित व्यक्ति वहां धर्मसंघ की मर्यादाओं का पालन करेगा और धार्मिक क्रियाकलापों से विमुख नहीं होगा।"

इस तरह 1851 में मठाध्यक्ष से सिफारिशी पत्र लेकर वे वियना विश्वविद्यालय में नामांकन कराने में सफल हो गए। विश्वविद्यालय उन्हें गणित और जीवविज्ञान के लिए होने वाली परीक्षा में आवश्यक सुधार लाने के उद्देश्य से भेजा गया था। वहां वे दो वर्षों (1851-53) तक रहे और इन विषयों का अध्ययन किया। उस समय वहां अनेक नामीगिरामी विज्ञानी पढ़ा रहे थे। इनमें से प्रमुख हैं– भौतिकी के डॉपलर, गणित के एटिंग हाउस और रसायन विज्ञान के रेटेनबेखर। प्रसिद्ध जीवविज्ञानी कार्ल नेगेली भी कभी-कभी वहां व्याख्यान देने आते थे। आप जानते ही हैं कि जीवों में कोशिका सिद्धांत का प्रतिपादन उन्होंने ही किया था। ये विज्ञानी अध्यापन के साथ-साथ अनुसंधान के कार्यों में भी लगे रहते थे। विश्वविद्यालय के माहौल ने मेंडेल पर बहुत गहरा प्रभाव डाला। यहीं उनमें अनुभवजन्य और व्यवस्थित वैज्ञानिक अनुसंधान में निपुणता का विकास हुआ। पिता और ग्रामीण वातावरण से विरासत में मिले खेती के काम, पौधों में कृत्रिम परागण और मधुमक्खी पालन का व्यावहारिक ज्ञान तो उन्हें था ही। इन्हीं सब का उपयोग बाद में उन्होंने अपने अनुसंधान के दौरान किया।

सप्ताह में सातों दिन काम करने के बावजूद विश्वविद्यालय में उनका समय काफी अच्छा बीत रहा था। वे भौतिकी और वनस्पति विज्ञान का अध्ययन विशेष रूप से कर रहे थे। वे विश्वविद्यालय के आम छात्रों की तरह बिल्कुल नहीं थे। 29 वर्षीय पुराने विचारों वाला शर्मीला पादरी ग्रिगोर अन्य छात्रों की तरह मौजमस्ती नहीं करता था, लेकिन हां! उन्हें एक खास शौक था– लॉटरी का टिकट खरीदने का शौक! उन्हें गणित और हिसाब-किताब करना बहुत अच्छा

लगता था। अंकों का खेल उन्हें बहुत लुभावना लगता था। यह सोच कर कि किस्मत ने भी अगर साथ दिया तो लॉटरी का इनाम शायद उन्हें ही मिले और वे रातोंरात लखपति हो जाएं!

सन् 1853 में ही उन्होंने वियना की जंतु और वनस्पति विज्ञान संस्था की संस्थापक सदस्यता ग्रहण की। पांच अप्रैल 1854 को मटर के पौधों में लगनेवाले एक कीट रोग (पी विवेल) के बारे में उन्होंने संस्था को एक विस्तृत पत्र लिखा। 1854 के मई महीने में विश्वविद्यालय की पढ़ाई समाप्त करके वे ब्रून लौट आए। यहां उन्हें एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में एक आपूर्ति शिक्षक के रूप में भौतिकी और प्रकृति विज्ञान पढ़ाने को कहा गया। दो वर्ष बाद 1856 में एक बार फिर उन्होंने सर्टिफिकेट परीक्षा देने की ठानी, लेकिन ठीक परीक्षा के समय वे बीमार पड़ गए। इस कारण वे परीक्षा नहीं दे सके। अगले वर्ष उन्होंने परीक्षा फिर दी, परंतु नतीजा वही! वे फिर फेल कर दिए गए। वे पौधों में निषेचन के सिद्धांत के सवाल पर परीक्षकों से बहस करने लगे थे। प्रोफेसर फेंजल नामक परीक्षक परागकणों से नये पौधों की उत्पत्ति के पुराने सिद्धांत के समर्थक थे, जबकि मेंडेल ने पौधों में लैंगिक प्रजनन के सिद्धांत के समर्थन में प्रमाण प्रस्तुत किया था। परीक्षक ने इसे उनकी हठधर्मिता माना था। इस घटना के बाद उन्होंने परीक्षा देने की फिर कभी कोशिश नहीं की। वे पहले की तरह उसी विद्यालय में पढ़ाते रहे।

वियना विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण के दौरान ही अनुसंधान की एक योजना मेंडेल के दिमाग में जन्म ले चुकी थी। वहां से लौटने के बाद 1854 से उन्होंने इसे अंजाम देना शुरू भी कर दिया था। सबसे पहले उन्होंने पहले के विज्ञानियों द्वारा पौध संकरण पर किए गए शोधनिबंधों को बड़े ध्यान से पढ़ा। प्रख्यात संकरण विशेषज्ञ जोसेफ केलराइटर, कार्ल गेर्टनर, शार्ल नाउडिन, जॉन गॉस, विचुरा, नाइट आदि के निबंधों पर उन्होंने विशेष रूप से ध्यान दिया। उस समय विज्ञान का सर्वाधिक ज्वलंत और मूल प्रश्न आनुवंशिकता का था, यानी जीवों में चारित्रिक लक्षणों का प्रवाह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में कैसे होता है?उस समय आनुवंशिकता के बारे में प्रचलित सिद्धांत 'रक्तमिश्रण' का सिद्धांत ही मान्य था, यानी दो अलग-अलग लक्षणों वाली संततियों में रक्त घुलमिल जाता है। इस कारण पहली पीढ़ी की संतानें माता-पिता दोनों के औसत लक्षण लिए हुए रहती हैं। ये लक्षण अगली पीढ़ियों में हल्के होते चले जाते हैं और बहुत बाद में गायब हो जाते हैं, लेकिन उस समय भी कई विद्वान इस सिद्धांत को सही नहीं मानते थे। दोनों प्रकार के विचारों के लिए विद्वानों के पास तर्क तो थे, लेकिन प्रमाणों की कमी थी।

इसी को ध्यान में रखकर अपने पूर्ववर्ती विज्ञानियों के विपरीत मेंडेल ने एक ऐसे पौधे का चुनाव किया, जो एक-दूसरे से एक ही चारित्रिक विशेषता में भिन्न था। इससे स्पष्टता से यह पता लगाया जा सकता था कि जनक पौधों की ये विशेषताएं पीढ़ी दर पीढ़ी किस प्रकार हस्तांतरित होती हैं। अपने शोध में उन्होंने संकरण पर किए गए पूर्व के प्रयोगों का भरपूर उपयोग किया, लेकिन सबसे खास बात थी– प्रयोग के लिए सही और सटीक शोधवस्तु का चुनाव। संकरण प्रयोग में यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने एक ही पौध प्रजाति की विविध किस्मों के बीच

मटर के फूलों में मादा और नर जनन अंग नाव के आकार वाली पंखुड़ियों में बंद होते हैं। मादा जनन अंग को स्त्री केसर (कार्पेल) कहा जाता है। यही बाद में छीमी में बदल जाता है। नर जनन अंग को पुंकेसर (स्टामेन) कहते हैं और पुंकेसरों के समूह को 'पुमंग'। पुंकेसर में परागकोष होते हैं। इनमें परागकण होते हैं। ये ही पौधों के नर तत्त्व का निर्माण करते हैं। फूल की कलिकावस्था में परागकोष फूट जाते हैं, जिससे परागकण स्त्रीकेसर के ऊपरी भाग 'वर्तिकाग्र' (स्टिग्मा) पर बिखर जाते हैं। इस क्रिया को परागण कहते हैं। परागण दो प्रकार का होता है— स्वयंपरागण और परपरागण। स्वयंपरागण में किसी फूल के 'स्टिग्मा' पर उसी फूल के पराग कण बिखरते हैं, जबकि परपरागण में दूसरे पौधों के फूलों के पराग कणों से परागण होता है। मटर के पौधों में स्वयंपरागण होता है।

मेंडेल बड़ी सावधानी से एक छोटी चिमटी द्वारा पुंकेसरों से उनके परागकोष हटा लेते थे। इस क्रिया को 'बंध्याकरण' (इमैस्कुलेसन) कहा जाता है। फिर इसके स्त्रीकेसर के शीर्ष भाग, यानी 'स्टिग्मा' पर दूसरे पौधों के फूलों से परागकण लेकर बिखेर देते थे। इस प्रकार परपरागित फूलों को वे एक कपड़े की थैली में बंद करके बांध देते थे, ताकि फिर किसी प्रकार का परागण न हो सके। इस क्रिया को कृत्रिम परागण या संकरण कहा जाता है। यह काम हर किस्म के फूलों के साथ करना होता था और फूलों और पौधों की संख्या सैकड़ों में होती थी।

जैसा कि कहा जा चुका है, ब्रून के मठ में एक वानस्पतिक उद्यान था, जिसकी देखरेख मेंडेल ही करते थे। इस उद्यान के एक हिस्से में उन्होंने अपने प्रयोगों के लिए क्यारियां बनवाईं, जो 35 मीटर लंबी और सात मीटर चौड़ी थी। ये क्यारियां आज तक संजोयी हुई हैं और सुरक्षित हैं।

पहला साल बीतने के बाद फसल काटी गई। प्रत्येक पौधे की छीमियों को अलग-अलग पैकेटों में रखा गया। फिर उनके एक-एक दाने (बीज) की गिनती की गई। सभी सातों प्रयोगों के नतीजे एक जैसे थे। उदाहरण के लिए— गोलाकार और झुर्रीदार बीजवाले पौधों के बीच संकरण से प्रथम पीढ़ी (एफ 1) में सभी संतानें गोलाकार बीजोंवाली हुईं। इसका भी कोई असर नहीं पड़ा कि गोलाकार बीज नर पौधों के थे या मादा पौधों के। इस आधार पर मेंडेल ने निष्कर्ष निकाला कि बीजों की गोल आकृति झुर्रीदार आकृति पर प्रभावी होती है, यानी उसे ढक लेती है। इस प्रयोग को उन्होंने कई बार दुहराया, लेकिन नतीजा वही निकला। ऐसा मटर के सभी सात लक्षणों के साथ हुआ।

अगले साल पहली पीढ़ी के संकर बीजों को उन्होंने अलग-अलग क्यारियों में बोया और पौधों को प्राकृतिक परागण के लिए छोड़ दिया। उन्होंने पौधों की देखरेख के अलावा और कुछ नहीं किया। दूसरी पीढ़ी (एफ 2) की फसल काटी गई और बीजों की गिनती की गई। एफ 2 पौधों से प्राप्त बीजों को मिलने नहीं दिया गया। उन्हें अलग-अलग पैकेटों में रखा गया और उनकी वंशावली तैयार की गई। नतीजे आश्चर्यचकित कर देते हैं। एफ 1 की सभी संतानें एक जैसी थीं, कोई फर्क नहीं था और कोई एक चारित्रिक लक्षण प्रभावी होता था, लेकिन एफ 2 की संकर संतानों में लक्षणों का वियोजन होता था। वे समरूप नहीं थीं। उनमें काफी विविधता थी। उनमें दोनों प्रकार के बीज थे– प्रभावी लक्षण वाले बीज और अप्रभावी लक्षण वाले बीज। बीजों को गिनने पर पता चला कि दो प्रकार के बीजों का अनुपात हर हालत में निश्चित है, यानी तीन भाग प्रभावी और एक भाग अप्रभावी लक्षण वाले बीज। मेंडेल प्रयोगों को तीसरी पीढ़ी (एफ 3) तक ले गए। एफ 3 के अध्ययन से एक और नियम स्पष्ट हुआ। अप्रभावी लक्षणों वाले पौधों में वियोजन बिल्कुल नहीं होता था, जबकि प्रभावी लक्षणों वाले पौधों का व्यवहार एक जैसा नहीं था। उनके 1/3 पौधों में केवल प्रभावी लक्षण पाए गए और लक्षणों का कोई वियोजन नहीं हुआ, लेकिन 2/3 पौधों में प्रभावी और अप्रभावी लक्षणों का वियोजन एफ दो के पौधों की तरह 3:1 के अनुपात में हुआ।

मेंडेल अपने प्रयोगों को और आगे ले गए। अब उन्होंने दो-दो लक्षणों वाले पौधों के बीच संकरण किया और एफ दो की संततियों का अध्ययन किया। एक प्रयोग में पीले और गोलाकार तथा हरे और झुर्रीदार बीजों वाले पौधों के बीच संकरण किया गया। एफ 1 में सभी बीज पीले और गोलाकार थे। यह दोनों लक्षणों के प्रभाव के कारण संभव हुआ था और इसकी परख उन्होंने पहले कर ली थी, लेकिन उन्हें एफ दो के परिणाम ने आश्चर्य में डाल दिया। चारों लक्षण हर संभव ग्रुप बनाते हुए जोड़ियों में वियोजित हुए थे। दोनों लक्षणों की जोड़ियों का अनुपात था– 9:3:3:1, यानी नौ भाग पीले और गोलाकार बीजों का, तीन भाग हरे और गोलाकार बीजों का, फिर तीन ही भाग पीले और झुर्रीदार बीजों का और एक भाग हरे और झुर्रीदार बीजों का। इस प्रयोग में मेंडेल को एफ दो में कुल 556 बीज मिले थे। इसमें पीले और गोलाकार बीजों की संख्या थी 315, पीले और झुर्रीदार बीजों की 101, हरे और गोलाकर बीजों की 108 और हरे और झुर्रीदार बीजों की 32। इससे स्पष्ट हो गया था कि जब जनक पौधे एक से अधिक लक्षणों में भिन्न होते हैं, तो सभी लक्षण स्वतंत्र रूप से एफ दो में वियोजित होते हैं। नोट करनेवाली बात यह थी कि हरे और गोलाकार तथा पीले और झुर्रीदार बीज बिल्कुल नये प्रकार के थे, जब कि अन्य दो ग्रुप के बीज अपने जनक बीजों की ही तरह थे। ऐसा दोनों ग्रुपों के लक्षणों के आपस में विनिमय के कारण ही संभव हो सकता था! तो क्या जीवों की भावी पीढ़ियों में चारित्रिक लक्षण घुलते-मिलते नहीं हैं, केवल साथ-साथ रहते हैं? मेंडेल ने इस सवाल का जवाब पाने के लिए एफ दो के संकर पौधों का छठी पीढ़ियों तक अध्ययन किया। इससे पता लगा कि ग्रुप पीले और गोलाकार, हरे और गोलाकार तथा पीले और झुर्रीदार बीजों में शुद्ध और अशुद्ध दोनों प्रकार के बीज एक निश्चित अनुपात में पाए जाते हैं। इसे पूरी तरह साबित करने के लिए उन्होंने एफ 1 के संकर पौधों को अप्रभावी लक्षणों वाले जनक पौधों से संकरण कराया। इस प्रकार के संकरण को पृष्ठ संकरण (बैक क्रॉस) कहा जाता है। बैक क्रॉस में उन्हें 55 पीले और गोलाकार बीज, 51 हरे और गोलाकार बीज, 49 पीले और झुर्रीदार बीज और 53 हरे और झुर्रीदार बीज मिले। दूसरे शब्दों में इन चारों प्रकार के बीजों का अनुपात रहा 1:1:1:1। मेंडेल को ऐसे ही परिणाम अन्य युगल और पृष्ठ संकरण से भी मिले।

इन प्रयोगों में नये प्रकार के बीज पाकर वे बहुत हैरान हो गए। जीवों की नई प्रजातियों की रचना क्या इसी प्रकार हुई होगी? वे सोचने लगे। उन्होंने बहुत ही विनम्र शब्दों में लिखा, "मैं ईश्वर की सत्ता में विश्वास करने वाला एक धर्मपरायण व्यक्ति हूं। एक मठ का पुजारी होने के नाते ऐसा विश्वास करना मेरा धर्म और कर्त्तव्य दोनों है, लेकिन मटर की इन क्यारियों में मैं अपने नवीन और

अभूतपूर्व बच्चों (मटर के पौधों) को भी जन्म लेते हुए देख रहा हूं! यह मुझे चौंका देता है!"

उनके प्रयोगों के परिणाम निर्विवाद रूप से आनुवंशिकता के गूढ़ नियमों की कहानी कह रहे थे। आनुवंशिकता में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में चारित्रिक विशेषताओं के हस्तांतरण में चारित्रिक विशेषताएं सम्मिश्रित नहीं होती हैं, न ही वे फीकी या हल्की होती जाती हैं। इसके केंद्र में जरूर कोई ठोस कण या अविभाज्य इकाई है। ये कण भले ही थोड़ी देर के लिए पहली संकर पीढ़ी में एक साथ हो जाएं, लेकिन अगली पीढ़ियों में वे फिर से एक निश्चित अनुपात में प्रकट होते हैं। दूसरे शब्दों में अगली पीढ़ियों में चरित्रों का वियोजन एक निश्चित अनुपात में होता है और इसका पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। मेंडेल के ये विचार क्रांतिकारी थे। उस समय के जीवविज्ञान के लिए ऐसी बातें करना हास्यास्पद और मूर्खतापूर्ण ही था। उस समय कोई भी ऐसी बातों को बिल्कुल नहीं मानता था। मेंडेल के लिए ऐसा निष्कर्ष निकालना इसलिए संभव हो पाया, क्योंकि उन्होंने पहली बार गणित का उपयोग अपने विशद् प्रयोगों के विश्लेषण में किया था। मेंडेल को गणित, विशेषकर बीजगणित का विशेष ज्ञान था। यह वियना विश्वविद्यालय में उनके अध्ययन का नतीजा था।

लेकिन मेंडेल की महानता सिर्फ इसमें ही नहीं है कि उन्होंने आनुवंशिकता के नियमों का प्रतिपादन किया, बल्कि उनके कारणों को भी ढूंढ़ा और व्याख्या की। इसके लिए उन्होंने एक अद्भुत परिकल्पना की। इसके अनुसार माता-पिता की जनन कोशिकाओं में एक विशिष्ट द्रव्य संरचना होती होगी, जो संतानों में उनकी विशेषताओं को प्रकट होने देने में मदद करती है। माता और पिता दोनों से हर प्रकार की एक-एक विशेषता वाहक इकाई उनकी संतानों को प्राप्त होती है। इन इकाइयों को तब उन्होंने 'घटक' या फैक्टर (अपनी मातृभाषा जर्मन में 'मर्कमाल') कहा था। आज इन्हें हम जीन वंशाणु कहते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो एफ दो संकर पौधों में दोनों जनन पौधों की विशेषताएं प्रकट नहीं होती। माता-पिता के पास हर प्रकार के घटकों की जोड़ियां होती हैं। इसमें से सभी प्रकार के एक-एक 'घटक' भ्रूण को मिलते हैं। उन्होंने प्रभावी घटक को अंग्रेजी के बड़े अक्षरों से दर्शाया और अप्रभावी घटक को छोटे अक्षरों से। इस तरह उनके आनुवंशिकता के नियमों को समझना आसान हो गया था। घटकों के प्रभावी और अप्रभावी रूप को आज 'द्वैकरूप' या 'द्वैक' (एलिलोमॉर्फ या एलिल) कहा जाता है। उन्होंने 'समयुग्मी' (होमोजाइगस), विषमयुग्मी (हटरोजाइगस), 'बाह्य रूप' (फेनोटाइप) और 'जीन रूप' (जीनोटाइप) पौधों की भिन्नता को भी समझाया।

आनुवंशिकता के संबंध में मेंडेल के विचार बिल्कुल स्पष्ट थे। आनुवंशिक समानता या विभिन्नता प्राणियों के जनन द्रव्यों में विद्यमान घटकों द्वारा एक निश्चित नियम के अनुसार निर्धारित होती है। ये घटक पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी पहचान बनाए रखते हैं। चारित्रिक विशेषताओं के निर्माण में ये एक-दूसरे से सहयोग करते हैं और आपस में संयोजित नहीं होते। मेंडेल के नियम जीवविज्ञान में उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं, जितने न्यूटन और आइंस्टीन के सिद्धांत भौतिकी में। 1865 में इन नियमों का प्रतिपादन और घटकों (वंशाणुओं) की परिकल्पना एक महान खोज थी। इसे उन्होंने उत्कृष्ट प्रयोगों के ठोस प्रमाणों और अकाट्य तर्कों के आधार पर सिद्ध किया था। इसे जीवविज्ञान का आणविक सिद्धांत कहा जा सकता है।

ब्रून उन दिनों वैज्ञानिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र हुआ करता था। वहां की 'प्राकृतिक इतिहास की संस्था' की पहचान पूरे यूरोप में थी। यह संस्था अमूमन वैज्ञानिक गोष्ठियां आयोजित करती थी और एक शोधपत्रिका भी प्रकाशित करती थी। ग्रिगोर मेंडेल 1862 में इस संस्था के संस्थापक सदस्य बन गए थे और इसकी वैज्ञानिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेते थे। मटर पर किए गए प्रयोगों के परिणामों और निष्कर्षों पर उन्होंने अपनी मातृभाषा जर्मन में एक विस्तृत शोधनिबंध लिखा। निबंध का शीर्षक था– 'पौधों में संकरण पर प्रयोग।' इस निबंध को उन्होंने इस संस्था की दो गोष्ठियों में प्रस्तुत किया। पहली प्रस्तुति थी– आठ फरवरी। 1865 को और दूसरी आठ मार्च 1865 को। पहली प्रस्तुति के समय व्याख्यान कक्ष में काफी लोग उपस्थित थे। मेंडेल का आनुवंशिकता पर व्याख्यान किसी की समझ में नहीं आया। बहुतों ने तो नाक-भौं सिकोड़ी। कुछेक लोगों को उनके विचार बेकार और वाहियात लगे। आठ मार्च को जब उन्होंने दूसरी बार व्याख्यान दिया तो व्याख्यान कक्ष लगभग खाली था। इस बार बहुत ही कम लोगों ने संगोष्ठी में भाग लिया था। मेंडेल का व्याख्यान अगले वर्ष 1866 में इस संस्था की शोधपत्रिका के चौथे अंक में प्रकाशित हुआ। इस पत्रिका की 133 प्रतियां यूरोप और अमेरिका की विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाओं और पुस्तकालयों में भेजी गईं। उन्होंने स्वयं अपने शोधनिबंध की 40 प्रतिलिपियों (रिप्रिंट्स) का अलग से प्रकाशन करने के लिए विशेष आदेश भी दिया था। ऐसा उन्होंने ब्रून के बाहर के विद्वानों के पास भेजने के लिए किया था।

1870 तक मेंडेल वैज्ञानिक अध्ययनों में व्यस्त रहे। मटर के अलावा उन्होंने राजमा, मक्का आदि कई पौधों में संकरण पर कई प्रयोग किए। उन्होंने मधुमक्खियों और चूहों पर भी प्रयोग किए थे, लेकिन मठ में धार्मिक कारणों से जंतुओं पर प्रयोग करना वर्जित था। अतः उन्हें जंतुओं पर

प्रयोग करने से मना कर दिया गया। राजमा पर किए गए प्रयोगों के कुछ परिणाम मटर से भिन्न थे। इस भिन्नता की भी व्याख्या उन्होंने अपने नियमों के आलोक में की थी, लेकिन मठ के कार्यों में बढ़ती हुई व्यस्तता के कारण वे अन्य शोधकार्यों का प्रकाशन नहीं कर सके। इसलिए उनकी इन कृतियों की विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मेंडेल के इतने महान आविष्कार को तत्कालीन विज्ञान जगत् समझ नहीं सका। उन्हें अपने जीवन काल में वह श्रेय और सम्मान नहीं मिल पाया, जिसके वे अधिकारी थे। उनकी खोज पर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया और वे 37 वर्ष तक गुमनामी के अंधेरे में रहे।

वे ब्रून के मठ में मात्र एक युवा संत थे और वहीं एक स्कूल में विज्ञान और गणित पढ़ाते थे। यद्यपि वे बहुत ही प्रतिभावान और विलक्षण व्यक्ति थे, फिर भी उन्हें विज्ञानी तो नहीं ही माना जा सकता था। आमतौर पर ऐसा होता है कि जब किसी लेखक या कवि की रचना प्रकाशित होती है,

तो वह चाहता है कि लोग उसकी रचना को पढ़ें और उसका मूल्यांकन करें। विज्ञानी भी ऐसा ही करता है। वह अपने प्रकाशित शोधपत्र की प्रतिलिपियां अन्य विज्ञानियों को मूल्यांकन के लिए भेजता है। शोधपत्रिका तो पुस्तकालयों और कुछ विज्ञानियों द्वारा अलग से खरीदी जाती है। विज्ञानियों के बीच आपसी संबंध और विचारों के आदान-प्रदान के लिए यह बहुत जरूरी भी होता है। यह विज्ञान की प्रगति में सहायक होता है।

मेंडेल ने भी अपने शोधनिबंध की एक-एक प्रतिलिपि यूरोप के कई जीवविज्ञानियों के पास भेजी थी, लेकिन किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने पत्र के साथ एक प्रतिलिपि कार्ल नेगेली को भेजी थी। प्रोफेसर नेगेली उस समय पूरे यूरोप में सुविख्यात थे। जीवों में कोशिका सिद्धांत का प्रतिपादन उन्होंने ही सबसे पहले किया था। मेंडेल प्रोफेसर नेगेली को वियना विश्वविद्यालय के दिनों से ही जानते थे। पत्र में उन्होंने अपने शोध के बारे में नेगेली के विचार जानने चाहे थे। ऐसा ही पत्र उन्होंने जीवविज्ञानी एंटन केरनर को भी लिखा था। पत्र के नीचे भेजनेवाले का नाम और पता इस प्रकार था, 'ग्रिगोर मेंडेल, मठ पादरी, रॉयल विद्यालय का शिक्षक, ब्रून, ऑस्ट्रिया।' नेगेली हर काम को निहायत तरतीब से और यथाशीघ्र किया करते थे। पत्रों का जवाब तो वे तुरंत देते थे, लेकिन मेंडेल के पत्र का जवाब वे सोच-समझकर देना चाहते थे। इसमें उन्हें दो सप्ताह लग गए। शोधनिबंध को उन्होंने कई बार पढ़ा था। प्रयोगों की रूपरेखा ठीक थी, आंकड़े भी गलत नहीं हो सकते थे, लेकिन जीवविज्ञान में हिसाब-किताब की क्या जरूरत है? और इसके आधार पर ऐसा निष्कर्ष! उन्हें लगा कि यह शोधकार्य बिल्कुल बकवास है। कोई भी विज्ञानी ऐसा निबंध नहीं लिखेगा जो इस पादरी मास्टर ने लिखा है। यह तो जीवविज्ञान और गणित की खिचड़ी है और हद तो यह है कि वह अपने-आपको आनुवंशिकता के नियमों का आविष्कारक समझ रहा है। क्या आनुवंशिकता का निर्धारण और पूर्वानुमान संभव है? नहीं! इसके विचारों में कोई दम नहीं है। वे चिढ़ से गए। 'नहीं!

कार्ल नेगेली

यह पत्र उत्तर देने लायक नहीं हैं।'' लेकिन मेंडेल बराबर उन्हें पत्र लिखते रहे। फिर एक दिन उन्हें नेगेली का पत्र मिला। पत्र में लिखी गई बातें उनके लिए निराशाजनक और हतोत्साहित करनेवाली थीं। प्रोफेसर ने लिखा था, ''जो सीजर का है, वह सीजर को दो और जो भगवान का है, वह भगवान को। मैं नहीं जानता कि तुम वनस्पतिशास्त्री हो या गणितज्ञ। अगर तुम वनस्पतिशास्त्री हो, तो पेड़-पौधों पर ध्यान दो और अगर गणितज्ञ हो, तो पौधों पर संकरण प्रयोग करने की तुम्हें कोई जरूरत नहीं है।'' मेंडेल के एक और पत्र के जवाब में उन्होंने लिखा था, 'मुझे लगता है कि मटर के साथ तुम्हारा प्रयोग अंतिम नहीं है। नये प्रयोगकर्त्ताओं में मूल कमी यह है कि उनमें केलराइटर या गेर्टनर जैसा धैर्य देखने को नहीं मिलता है। मेरे विचार से संकरण सिद्धांत की खोज में सफलता तभी मिल सकती है, जब प्रयोग, पौधों की अधिक प्रजातियों पर विस्तार से और सर्वमुखी किया जाए। तुमने बीजगणित के 'परिमेय' और 'अनुभवपरक सूत्र' जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। मेरी दृष्टि में वे यहां अनावश्यक लगते हैं। मुझे विश्वास है कि अन्य पौधों में प्रयोगों के परिणाम बिल्कुल भिन्न होंगे। मैं पिछले दस वर्षों से घंटपुष्पी (हॉकवीड) पर संकरण प्रयोग कर रहा हूं। इसमें ऐसा कुछ नहीं होता, जैसा तुम्हारे मटर के साथ होता है। तुम मेरे घंटपुष्पी पर भी कुछ प्रयोग करो और निष्कर्ष निकालो। यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हें इसका बीज भेज सकता हूं।' मेंडेल को नेगेली के शब्द तीर की तरह चुभे थे। वे उन जैसे सुप्रसिद्ध विज्ञानी से मान्यता प्राप्त करना चाहते थे, लेकिन उन्हें लगने लगा था कि उनके विचार बिंदुओं को नेगेली समझ नहीं पा रहे हैं। मेंडेल को पूरा विश्वास था कि उन्होंने एक व्यापक नियम की खोज की है और उनके द्वारा स्थापित सूत्र अनुभवपरक ही नहीं, संकरों में गुणवितरण के बुद्धिपरक सूत्र भी हैं।

लगभग चार वर्षों (1866-1870) तक 'मेंडेल', नेगेली को अपने विचार समझाने की कोशिश करते रहे, लेकिन हर बार वे मेंडेल को भला-बुरा कहते रहे और अपनी सोच पर अडिग रहे। शायद उन्होंने एक दुराग्रही मठवासी के वैज्ञानिक विचारों को समझना नहीं चाहा या समझने में असमर्थ रहे। हां, वे मेंडेल के पत्रों के उत्तर अवश्य देते रहे।

मेंडेल ने नेगेली द्वारा सुझाए गए घंटपुष्पी पर भी प्रयोग किये, जो लगभग चार वर्षों तक चले। इसकी 26 प्रजातियों के बीज उन्हें नेगेली ने ही उपलब्ध कराए थे। घंटपुष्पी पर प्रयोग करने की सलाह से बढ़कर घटिया और वाहियात सलाह कोई दूसरी हो ही नहीं सकती थी। यह एक अलैंगिक (एपोमिक्ट) पौधा है। इसमें परागण तो होता है और कुछ बीज भी बनते हैं, लेकिन

लैंगिक प्रजनन द्वारा नहीं। संकरण प्रयोग से इसमें विचित्र परिणाम आते हैं। मेंडेल ने इस पौधे पर संकरण के कई प्रयोग किए, लेकिन कोई सार्थक परिणाम नहीं मिला। इसमें चारित्रिक लक्षणों का वियोजन बिल्कुल नहीं होता था। घंटपुष्पी और अन्य पौधों के बारे में वे बराबर नेगेली को सूचना देते रहते थे। घंटपुष्पी को छोड़कर अन्य पौधों पर प्रयोगों के परिणाम मटर जैसे ही थे। यदि नेगेली समझ पाते कि जीवविज्ञान में उन्हें महानतम खोज की सूचना मिली है, तो नये जीवविज्ञान आनुवंशिकी का जन्म 19वीं सदी के छठे दशक में ही हो गया होता। यह जीवविज्ञान का दुर्भाग्य ही है कि मेंडेल का सारा श्रम लगभग 37 वर्षों तक पुस्तकालयों में पड़ा-पड़ा धूल बटोरता रहा।

1868 के आरंभ में किरील नैप की मृत्यु हो गई। नये मठाध्यक्ष का चुनाव करना बहुत ही जरूरी हो गया था। मठ के अधिकारियों, जिनकी संख्या 13 थी, के बीच से ही किसी को अध्यक्ष चुना जाना था। ग्रिगोर मेंडेल ही इस पद के लिए सबसे अच्छे उम्मीदवार समझे गए। धार्मिक समुदाय में उनका स्थान काफी ऊंचा था। वे समाज के एक सम्मानित व्यक्ति और योग्य शिक्षक थे। वे कई वैज्ञानिक संस्थाओं के भी सम्मानित सदस्य थे। चर्च के बाहर की दुनिया से भी उनका संबंध अच्छा था। मतदाताओं को उनके व्यक्तित्व में किरील नैप की ही छवि दिखाई देती थी। मेंडेल को लगता था कि उन्हें ही इस पद के लिए चुना जाएगा। चुनाव के पहले उन्होंने अपने छोटे बहनोई को एक पत्र भी लिखा था। इस पद को वे आर्थिक कारणों से भी पाना चाहते थे। वे सोचते थे कि इस पद पर रहकर वे अपनी छोटी बहन का ऋण चुकाने के साथ-साथ उसकी कुछ मदद भी कर सकेंगे।

30 मार्च 1868 को मेंडेल सर्वसम्मति से मठ के अध्यक्ष चुन लिए गए। उस समय उनकी उम्र केवल 46 वर्ष थी। यह मठ वैभवशाली तो था ही, मोराविया के जीवन में इसका एक विशेष महत्त्व भी था। मठाध्यक्ष प्रांतीय असेम्बली का पदेन सदस्य होता था। उस समय देश राजनीतिक उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा था। वहां का सम्राट हैब्सबर्ग एक तानाशाह था। 1867 में उसे संसद को सत्ता सौंपने को मजबूर कर दिया गया था और वह एक संवैधानिक सम्राट भर रह गया था। इसके पीछे मुख्यतः उदारवादी राजनीतिक दल कंजरवेटिव पार्टी का हाथ था। इस पार्टी ने कई महत्त्वपूर्ण सुधार के काम किए थे, जैसे– सम्राट की शक्ति और चर्च के प्रभुत्व को कम करना, सत्ता को राज्य के अधीन करना, समाज सुधार के कार्य करना आदि-आदि। रूढ़िवादियों जिनमें बड़े जमींदारों और चर्च के प्रतिनिधियों की संख्या अधिक थी, ने खुलकर इन सुधारों का विरोध

किया था। साम्राज्य का जर्मनभाषी भाग मुख्यतः सुधारों का समर्थन था, जबकि बहुसंख्यक चेक आबादी इनका विरोध करती थी। अपने सहयोगियों की परवाह किए बिना और बहुसंख्यक आबादी को लगभग चिढ़ाते हुए मेंडेल ने कंजरवेटिव पार्टी का समर्थन किया था। इससे बिशप बहुत नाराज हो गए थे। धार्मिक संप्रदाय चेक और जर्मन समूहों में बंट गया था।

ग्रिगोर मेंडेल को कई महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किया गया। इनमें प्रमुख हैं– प्राकृतिक विज्ञान संस्था का अध्यक्ष, कृषि संस्था का उपाध्यक्ष, मोराविया के मॉरगेज बैंक का निदेशक, रॉयल तथा इंपीरियल ऑर्डर का सदस्य, फ्रांसिस जोसेफ चर्च का सदस्य आदि-आदि। 1870 में उनकी वफादारी, देशभक्ति और कृषि तथा भू मूल्यांकन के क्षेत्र में विशेषज्ञता को ध्यान में रखते हुए उन्हें एक महत्त्वपूर्ण सरकारी समिति का सदस्य मनोनीत किया गया। 1872 में सम्राट ने उनको सराहनीय और देशभक्तिपूर्ण कार्यों के लिए 'ऑर्डर ऑफ फ्रेंज जोसेफ' प्रदान करके उन्हें सम्मानित किया। उन्होंने बर्लिन, वियना, लंदन, वेनिस और रोम की यात्राएं की। रोम से अंगूर के बीज लाकर उन्होंने मठ में इसकी खेती भी शुरू करवाई थी।

मेंडेल के अंतिम 10 वर्ष संघर्षपूर्ण और निराशाजनक थे। 1874 में ऑस्ट्रिया की उदारवादी सरकार ने मठों की संपत्ति पर अचानक कर बढ़ा दिया था। स्मरण रहे, उन्होंने इस सरकार को भरपूर समर्थन दिया था। इस कर वृद्धि का उद्देश्य मठ के क्रियाकलापों में सरकारी खर्च को कम करना था, ताकि पुजारियों के वेतन आदि में मदद की जा सके। इसका उद्देश्य वस्तुतः एक धर्मकोष का गठन करना था, न कि सरकार की अर्थव्यवस्था में योगदान। मेंडेल ने सरकार के इस कदम को असंवैधानिक माना और खुलकर इसका विरोध किया।

देश के अन्य मठों के साथ-साथ संत थॉमस मठ का भी कर निर्धारित किया गया। मेंडेल को सूचित किया गया कि 1875-1880 की अवधि के लिए उन्हें प्रतिवर्ष 7,330 गिल्डर इस धर्मकोष में देने होंगे। पूरे साम्राज्य में केवल वे ही ऐसे मठाध्यक्ष थे, जिन्होंने इसकी वैधता को मानने से इंकार किया था। इसके खिलाफ कोर्ट में अपील की जा सकती थी, लेकिन उन्होंने ऐसा करना ठीक नहीं समझा। उनके विचार से इसका मतलब होता, परोक्ष रूप से नई कर वृद्धि की वैधता को मानना। उन्होंने कानूनविदों की भी सलाह नहीं मानी और कानूनी लड़ाई लड़ने का निश्चय किया। वे अधिक-से-अधिक 2000 गिल्डर 'ऐच्छिक योगदान' के रूप में इस धर्मकोष के लिए देने को तैयार थे, लेकिन यह सरकार के अधिकारों का हनन था। अतः अधिकारियों ने इसे लेने से इंकार कर दिया। 1876 में सरकार ने मठ की कुछ परिसंपत्तियों को कर नहीं चुकाने के बदले में कब्जे में ले लिया। उन्होंने सरकार के इस व्यवहार का विरोध किया। मेंडेल बिल्कुल अकेले पड़ गए थे। उन्होंने सभी को नाराज कर दिया था। कंजरवेटिव पार्टी इसलिए नाराज थी, क्योंकि उसका ही एक प्रबल समर्थक पार्टी की नैया में छेद कर रहा था। रुढ़िवादियों की नाराजगी का कारण था— उनका सरकारी कानून का उल्लंघन। चर्च सोच रहा था कि मेंडेल महामूर्ख हैं। उनके सहयोगी अपने वैभवशाली मठ को बरबाद होते देख रहे थे, लेकिन मेंडेल झुके नहीं।

सरकार से इस लड़ाई में वे बिल्कुल अलग-थलग हो गए थे। कठिन मेहनत और परेशानियों के कारण उनका स्वास्थ्य भी दिन-ब-दिन गिरता जा रहा था। वे बहुत मोटे हो गए थे। उनके गुर्दे और हृदय में भी खराबी आ गई थी। वे ड्रॉप्सी से पीड़ित रहने लगे। वे हमेशा चिंताओं से घिरे रहते थे और बहुत अधिक सिगार (रोजाना 20-30 सिगार तक) पीने लगे थे। ऐसे समय में उनकी छोटी बहन के दो बेटे फर्डीनांद और अलोइस उनके साथ रहते थे। बड़े भांजे जोसेफ की अकाल मृत्यु हो गई थी। उन्होंने दोनों भांजों को पढ़ाया-लिखाया और मदद की थी। खाली समय में वे इनके साथ शतरंज खेलते और कहानियां सुनाते थे। बड़े होकर फर्डीनांद और अलोइस डॉक्टर बने। यह उनकी मदद और प्रेरणा से ही संभव हो सका था। कुछ समय वे बागवानी मधुपालन और अतिथियों के स्वागत में बिताते थे। अतिथियों में मुख्यतया विज्ञानी हुआ करते थे। छह जनवरी 1884 को दो बजे रात को निद्रावस्था में उनकी मृत्यु हो गई और सात जनवरी की सुबह उन्हें ब्रून के कब्रगाह में दफना दिया गया।

अपने जीवन का मूल्यांकन मेंडेल ने इन शब्दों में किया है, "यद्यपि मैंने अपने जीवन में कुछ कटु क्षणों को झेला है, मैं सधन्यवाद स्वीकार करता हूं कि इसका अधिकांश भाग सुखद और अच्छा

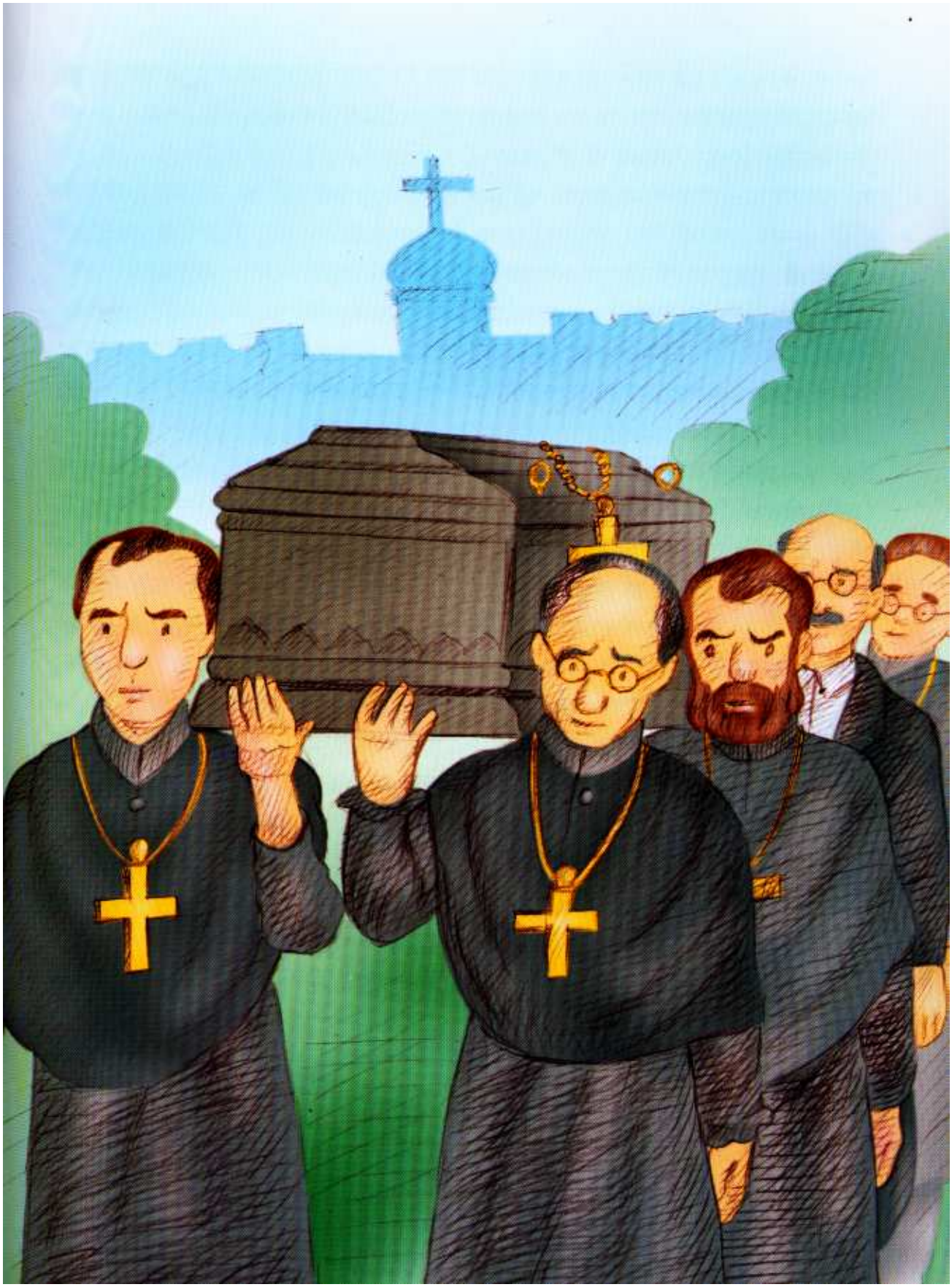

रहा है। मेरे वैज्ञानिक कार्यों ने मुझे बहुत संतोष दिया है और मुझे पूरा विश्वास है कि शीघ्र ही पूरी दुनिया इसके महत्त्व को समझेगी और सराहेगी।' वे बातचीत में अपने मित्रों और शिष्यों से बराबर कहा करते थे कि मेरा समय जरूर आएगा!''

लेकिन भाग्य ने उनका साथ कभी नहीं दिया। उनके पास आकर भी वह उन्हें दगा दे जाता था और मान्यता उन्हें नहीं मिल पाती थी। 1880 में विलहेल्म फोक ने पौध संकरण पर एक पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक में मेंडेल के शोधकार्यों का 14 स्थानों पर उल्लेख था। एक स्थान पर उन्होंने लिखा था, ''मेंडेल विश्वास करते थे कि विभिन्न प्रकार के संकर पौधों के बीच एक निश्चित संख्या संबंध होता है।'' चार्ल्स डार्विन को दूसरों के कार्यों और विचारों को जानने की बहुत उत्सुकता रहती थी। यह पुस्तक उनके भी हाथ लगी थी और सरसरी निगाह से उन्होंने इसे पढ़ा भी था, लेकिन मेंडेल के कार्यों से संबंधित उदाहरण वे देख नहीं पाए।

फिर 1884 में कार्ल नेगेली की विकासवाद पर एक वृहत् पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें उन्होंने अपने शोधकार्यों के आधार पर क्रमिक विकास की प्रक्रिया की विवेचना की थी। आनुवंशिकता के बारे में उन्होंने लिखा था कि अगर अंगोरा नस्ल की बिल्ली को किसी दूसरी नस्ल की बिल्ली से संकरण कराया जाता है, तो पहली पीढ़ी की संतानों में अंगोरा लक्षण विलुप्त हो जाता है, किंतु दूसरी पीढ़ी में उसकी संतानों में यह लक्षण फिर प्रकट हो जाता है। हालांकि उनके विचार सुस्पष्ट नहीं थे, लेकिन वे मेंडेल के विचारों से मिलते थे। हैरानी की बात यह है कि इस पुस्तक में उन्होंने मेंडेल के कार्यों की कहीं भी चर्चा नहीं की थी। स्मरण रहे, मेंडेल की मृत्यु इसी वर्ष हुई थी।

मेंडेल को उनके जीवनकाल में मान्यता क्यों नहीं मिली? विज्ञान जगत् ने उनकी खोज की खबर क्यों नहीं ली? नेगेली जैसा विज्ञानी भी उनके विचारों को क्यों नहीं समझ पाया? उन्होंने जानबूझकर तो मेंडेल की उपेक्षा नहीं की थी? किसी भी विज्ञानी का ध्यान उस समय मेंडेल की कृति पर क्यों नहीं गया? मेंडेल को ही आनुवंशिकता के नियमों को प्रतिपादित करने में सफलता क्यों मिली? उनके पहले के विज्ञानियों को क्यों नहीं?ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनके उत्तर जानने के लिए हमें 19वीं सदी के जीवविज्ञान की दशा और दिशा पर विचार करना होगा।

19वीं सदी में जीवविज्ञान पूर्णतः वर्णनात्मक था। 1860 के बाद तो चार्ल्स डार्विन का क्रमिक विकास का सिद्धांत ही इस पर इस कदर छाया रहा कि दूसरे विचारों को, चाहे वे कितने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न रहे हों, दरकिनार कर दिया गया। आनुवंशिकता की व्याख्या उस समय 'रक्त

मिश्रण' के सिद्धांत के आलोक में ही की जाती थी। डार्विन भी इसे ही मानते थे। एक साधारण मठवासी संत ने अपने प्रयोगों के आधार पर अकाट्य तर्कों द्वारा इस सुस्थापित सिद्धांत को चुनौती दी थी। 19वीं सदी में प्राणियों के जनन द्रव्यों में आनुवंशिकता की इकाइयों, 'घटकों' की उपस्थिति एक अद्‌भुत, अभूतपूर्व और देदीप्यमान परिकल्पना थी। जीवविज्ञान में गणित का उपयोग इस विज्ञान के लिए बिल्कुल नया और कल्पना से परे था।

उस समय तक यद्यपि कोशिका सिद्धांत की स्थापना हो चुकी थी, लेकिन कोशिका की रचना के बारे में प्रारंभिक ज्ञान ही उपलब्ध था। कोशिका विभाजन, गुणसूत्र, निषेचन, प्रजनन और भ्रूणविक के बारे में कुछ पता नहीं था। इनकी खोज मेंडेल की मृत्यु के बाद हुई है। बहुत बाद में पता चला कि मटर में सात जोड़ी गुणसूत्र होते हैं और मेंडेल के सातों 'घटक' अलग-अलग गुणसूत्र में स्थित हैं। अगर उनके दो से अधिक 'घटक' एक ही गुणसूत्र (क्रोमोजोम) पर स्थित होते तो लक्षणों का स्वतंत्र वियोजन नहीं मिलता और परिणाम बिल्कुल भिन्न होता। इसलिए मेंडेल बहुत ही भाग्यवान रहे। यह ठीक वैसा ही है जैसा किसी आदमी ने सात राज्यों की लॉटरी के टिकटों को खरीदा हो और सातों में उसी को पहला इनाम मिल गया हो। सांख्यिकीय भाषा में इसे 'बड़ा तीर मारना' या 'बिग शॉट' कहा जाता है। मेंडेल ने 'बिग शॉट' ही मारा था।

मेंडेल अपने समय से बहुत आगे थे। 19 वीं सदी में जीवविज्ञान उनके नियमों को समझने में असमर्थ था। यही कारण है कि कार्ल भी उन्हें नहीं समझ सके। नासमझी के कारण ही शायद उन्होंने मेंडेल की उपेक्षा की होगी। इसमें उनका दोष और पूर्वाग्रह नहीं था। ऐसा भी नहीं है कि मेंडेल का शोधनिबंध कोई मामूली शोधपत्रिका में प्रकाशित हुआ था। ब्रून की 'प्राकृतिक इतिहास की शोधपत्रिका' सारे यूरोप में अच्छी तरह प्रचारित और प्रसारित थी। अमेरिका में भी लोग इस पत्रिका के बारे में जानते थे। मेंडेल ने भी व्यक्तिगत स्तर पर अपने शोधनिबंध की प्रतिलिपि कई जानेमाने विज्ञानियों को मूल्यांकन के लिए भेजी थी।

इतिहास साक्षी है कि कई बार महापुरुषों को वह ख्याति नहीं मिल पाई है, जिसके कि वे योग्य थे। उन्हें या तो तत्कालीन समाज का विरोध झेलना पड़ा या भुला दिया गया। सुकरात को जहर का प्याला पीना पड़ा, गैलीलियों को शूली पर चढ़ा दिया गया और डार्विन को प्रखर विरोध का सामना करना पड़ा। इनका दोष केवल इतना था कि इन्होंने सच का साथ दिया था। फिर ग्रिगोर मेंडेल भला इससे अछूते कैसे रहते?

समय बीतता गया। विज्ञान के विकास की प्रक्रिया चलती रही। 20वीं सदी आ पहुंची। इस दौरान कृषि में पशुओं और खेतिहर पौधों में नस्ल और किस्म सुधार की जरूरत बहुत महसूस की जाने लगी थी। संकरण की समस्याएं जीवविज्ञानियों का ध्यान अपनी ओर विशेष रूप से खींच रही थी। फसल सुधार में संकरण के महत्त्व को पहचाना जा चुका था। सन् 1899 में संकरण पर विज्ञानियों का लंदन में एक महासम्मेलन हुआ था। इसे विलियम वेटसन के सुझाव पर 'आनुवंशिकी पर प्रथम कांग्रेस' का नाम दिया गया। अपने प्रतिवेदन में उन्होंने बताया कि आनुवंशिकता की प्रकृति सतत् न होकर छिन्न होती है। मेंडेल ने इस बात की पुष्टि तो बहुत पहले ही कर दी थी, परंतु उनका नाम किसी को भी याद नहीं आया। लंदन कांग्रेस अगर एक-दो साल बाद आयोजित हुई होती तो हर प्रतिवेदन में मेंडेल के नाम की चर्चा अवश्य हुई होती, लेकिन इस कांग्रेस में एक नये जीवविज्ञान, आनुवंशिकी (जेनेटिक्स) का जन्म हो चुका था।

सन् 1902 में एक ही शोधपत्रिका में तीन विभिन्न देशों के विज्ञानियों के शोधनिबंध एक साथ प्रकाशित हुए। ये थे– हॉलैंड के विख्यात वनस्पतिशास्त्री ह्यूगो डि फ्रीज, जर्मनी के कार्ल कॉरेंस और ऑस्ट्रिया के एरिक चेमार्क। यह आश्चर्य की बात थी कि तीनों ही निबंध एक ही विषय से संबंधित थे। सभी आनुवंशिकता की उन्हीं बुनियादी और मात्रात्मक नियमों की बातें कर रहे थे, जिनके बारे में ग्रिगोर मेंडेल 37 वर्ष पहले लिख चुके थे। फ्रीज के निबंध का शीर्षक था, 'संकरों में विशेषता वियोजन के नियम।' इस निबंध का सारांश पेरिस विज्ञान अकादमी की पत्रिका में भी प्रकाशित हुआ था, लेकिन इसमें मेंडेल के नाम का उल्लेख नहीं था। उन्होंने बाद में पूर्णनिबंध की पादटिप्पणी में लिखा था, "मेंडेल के इतने महत्त्वपूर्ण कार्य को बहुत कम लोग याद करते हैं। स्वयं

एरिक चेमार्क

ह्यूगो डि फ्रीज

कार्ल कॉरेंस

मैंने भी उसे तब पढ़ा, जब मेरे प्रयोग समाप्त हो चुके थे और इस निबंध में वर्णित नियम ज्ञात हो चुके थे।'' ठीक एक महीने के बाद कॉरेंस का निबंध 'उपजातीय संकरों के आचरण के बारे में ग्रिगोर मेंडेल के आनुवंशिकता के नियम' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। इसमें उन्होंने मेंडेल के आनुवंशिकता के नियमों की चर्चा विस्तार से की थी। उन्हें भी इन नियमों के बारे में उनके प्रयोगों की समाप्ति के बाद पता चला था। सर्वप्रथम कॉरेंस ने ही कार्ल नेगेली को लिखे गए मेंडेल के पत्रों को प्रकाशित करवाया था। कुछ ही समय बाद चेमार्क का शोधनिबंध 'मटर का कृत्रिम संकरण' प्रकाशित हुआ। अपने निबंध में उन्होंने लिखा था, ''फ्रीज, कॉरेंस और मेरे द्वारा मेंडेल की समकालिक खोज मुझे विशेष रूप से संतोष और आनंद देती है।'' मेंडेल के नियमों को स्वतंत्र रूप से इन तीनों विज्ञानियों ने दुबारा खोज निकाला था, लेकिन कुछ विज्ञानी जैसे– स्टर्न, शेरवुड, मोगानन आदि चेमार्क को सहअन्वेषक नहीं मानते। इनके अनुसार इसके प्रमाण उपलब्ध हैं कि चेमार्क ने अपने शोधपत्र के प्रकाशन से पूर्व और प्रयोगों के दौरान मेंडेल का शोधनिबंध पढ़ लिया था।

इस प्रकार 1902 में मेंडेल फिर से जीवित हो उठे, ईसा मसीह की तरह! जीवविज्ञान के लिए यह सुनहरा साल था। यहां यह इंगित करना जरूरी है कि किसी भी वैज्ञानिक अनुसंधान में उसके परिणामों का प्रकाशन अनिवार्य और आवश्यक है। इसके बिना अनुसंधान का कोई अर्थ नहीं होता। मेंडेल का नाम आज कोई नहीं जानता, अगर उनकी कृतियों का प्रकाशन नहीं हुआ होता। कहा भी गया है, ''न क्षरन्ति इति अक्षरम्'', अर्थात् अक्षरों का विनाश नहीं होता।

उनके द्वारा प्रतिपादित आनुवंशिकता के नियमों को 'मेंडेलवाद' कहा गया और उन्हें 'आनुवंशिकी का जनक!'

मेंडेलवाद की पुनर्स्थापना जीवविज्ञान के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। आनुवंशिकी, जीन विज्ञान की महान यात्रा इसके बाद से ही आरंभ होती है। रास्ता अवश्य ही लंबा, अनजाना, सुनसान और कठिनाइयों से भरा था, परंतु उसने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। लंबे-लंबे डग भरता और छलांगें लगाता हुआ आज वह 21वीं सदी में प्रवेश कर चुका है। नये जीवविज्ञान आनुवंशिकी की जो ठोस नींव फादर ग्रिगोर मेंडेल ने 1865 में डाली थी, उस पर आज इस विज्ञान का भव्य और विशाल महल खड़ा है। इस महल में अब तो जीन इंजीनियरी, जैन प्रौद्योगिकी, जीनो मिकी और प्रोटीयोमिकी जैसे प्रमुख खंड हैं। मात्र 100 वर्षों के अल्पकालिक इतिहास में इस विज्ञान ने असीम और अकल्पनीय प्रगति की है। मात्र दो अक्षरों का शब्द 'जीन' आज मानव सभ्यता और इतिहास की दशा और दिशा बदलने का दंभ भरने लगा है। इस सदी का इतिहास शायद जीन विज्ञान और जैव सूचना विज्ञान द्वारा मिलकर लिखा जाएगा। अभी से ही ऐसे संकेत मिलने लगे हैं कि वर्तमान एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में दुरुपयोग के फलस्वरूप 'जीन' कहीं विश्व की बहुसंख्यक आबादी के लिए शोषण का पर्याय न बन जाए। जीन साम्राज्यवाद की आशंकाएं काफी बढ़ी हैं, जो भविष्य में संपूर्ण मानवता के विनाश का कारण बन सकता है। मानवता को इस गंभीर खतरे से सावधान रहना होगा और एक वैकल्पिक विश्व व्यवस्था की रचना करनी होगी। जीन भी मानवता के विनाश का कारण हो सकता है, इसकी कल्पना ग्रिगोर मेंडेल ने शायद सपने में भी नहीं की होगी!

1965 के अगस्त माह में चेक गणराज्य की राजधानी ब्रूनो शहर की रंगशाला 'नोवे दिव्वालो' में ग्रिगोर मेंडेल का शताब्दी समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया गया था। इस समारोह में विश्व के प्रख्यात जीवविज्ञानी और आनुवंशिकीविद् उपस्थित हुए थे। सभी ने अपने-अपने प्रतिवेदनों में मेंडेल की महानता और महान खोज पर विस्तृत प्रकाश डाला था। समारोह की समाप्ति के बाद कुछ विज्ञानी मेंडेल के पैतृक गांव हिचिंत्से भी गए थे। गांववालों से उन्होंने पूछा था कि क्या वे यहां के किसी ग्रिगोर योहान मेंडेल, जो ब्रूनो के मठ में बहुत पहले पादरी बन गए थे और उन्होंने एक नये विज्ञान की आधारशिला रखी थी, का नाम सुना है? इस प्रश्न पर अधिकांश गांववालों ने अनभिज्ञता ही प्रकट की, लेकिन गांव के एक सर्वाधिक वृद्ध व्यक्ति ने बताया कि हां, बचपन में सुना था कि इस नाम का एक व्यक्ति यहां पैदा हुआ था, जो गरीबी के कारण मठ का पुजारी बन

गया था। फिर बाद में वह मठाधीश भी हो गया था। उन्होंने इस गांव में एक प्रकाश स्तंभ भी बनवाया था, जो आज भी जर्जर अवस्था में मौजूद है। आप लोग उसे देख सकते हैं। मेंडेल को उसके गांववालों ने सिर्फ इसलिए याद रखा, क्योंकि उन्होंने गांव में एक प्रकाश स्तंभ का निर्माण करवाया था। मेंडेल के जनकल्याण की यही भावना विज्ञानियों के लिए एक संदेश है। विज्ञान को मानव कल्याण के लिए ही होना चाहिए। इसके बिना वह बेमानी है।

NBT INDIA

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

₹ 55.00
ISBN 81-237-6040-X
9 788123 760407
12131400